# अनेकान्त

सम्पादक—जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

भरतके अहिंसक सन्त महामना पूज्य **गणेशप्रसादजी वर्णी** की ८०वीं जन्म जयन्ती गयामें आनन्द सम्पन्न होगई। पूज्य वर्णीजीने ८०वें वर्षमें प्रवेश किया है। हमारी हार्दिक कामना है कि आप शत वर्ष जीवी हो। पूज्य वर्णीजीके महनीय जीवनसे समाजको यथेष्ट लाभ उठाना चाहिये। आपका आध्यात्मिक महत्वपूर्ण प्रवचन पेज १७३ पर पढ़िए।

अनेकान्त
वर्ष १२
किरण ५

अक्टूबर
सन् १९५३

**अनेकान्तके ग्राहक बनना और बनाना**
**प्रत्येक साधर्मी भाईका कर्तव्य है**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# विषय-सूची


१ लघुद्रव्यसंग्रह—[सम्पादक ... ... १४६
२ समन्तभद्र-वचनामृत—[ युगवीर ... १५१
३ राजस्थानके जैन शास्त्र भण्डारोंमें उपलब्ध महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ—[ ले० कस्तूरचन्द जैन कासलीवाल एम० ए० ... १५५
४ हिन्दी जैन-साहित्यकी विशेषता—[ श्रीकुमारी किरणवाला जैन ... १५६
५ हमारी तीर्थयात्राके संस्मरण—[ परमानन्द जैन शास्त्री ...
६ कुरलका महत्व और जैनकर्तृत्व [श्रीविद्याभूषण पं० गोविन्दराय जैन शास्त्री ...
७ साहित्य परिचय और समालोचन [परमानन्दजैन
८ साधु कौन है ? (एक प्रवचन)—[श्री १०५ पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी ...



## श्रीबाहुबलि-जिनपूजा छपकर तय्यार !!

श्री गोम्टेश्वर बाहुबलिजी की जिस पूजाको उत्तमताके साथ छपानेका विचार गत मासकी किरणमें प्रकट किया गया था वह अब संशोधनादिके साथ उत्तम आर्टपेपर पर टाइपमें फोटो ब्राउन रङ्गीन स्याहीसे छपकर तयार हो गई है। साथमें श्रीबाहुबलीजीका फोटो भी अपूर्व शोभा दे रहा है। प्रचारकी दृष्टिसे मूल्य लागतसे भी कम रखा गया है। जि पूजा तथा प्रचारके लिये आवश्यकता हो वे शीघ्र ही मंगालेवें; क्योंकि कापियाँ थोड़ी ही छपी १०० कापी एक साथ लेने पर १२) रु० में मिलेगी। दो कापी तक एक आना पोष्टेज लग १० से कम किसीको वी०पी० से नहीं भेजी जाएंगी।

मैनेजर—'वीरसेवामं
१ दरियागंज, दिल्ली

## अनेकान्तकी सहायताके सात मार्ग

( १ ) अनेकान्तके 'संरक्षक'-तथा सहायक' बनना और बनाना।
( २ ) स्वयं अनेकान्तके ग्राहक बनना तथा दूसरोंको बनाना।
( ३ ) विवाह-शादी आदि दानके अवसरों पर अनेकान्तको अच्छी सहायता भेजना तथा भिजवाना।
( ४ ) अपनी ओर से दूसरोंको अनेकान्त भेंट-स्वरूप अथवा फ्री भिजवाना; जैसे विद्या-संस्थाओं, लायब्रे सभा-सोसाइटियों और जैन-अजैन विद्वानोंको।
( ५ ) विद्यार्थियों आदिको अनेकान्त अर्ध मूल्यमें देनेके लिये २५), २०) आदिकी सहायता भेजना। सहायतामें १० को अनेकान्त अर्धमूल्यमें भेजा जा सकेगा।
( ६ ) अनेकान्तके ग्राहकोंको अच्छे ग्रन्थ उपहारमें देना तथा दिलाना।
( ७ ) लोकहितकी साधनामें सहायक अच्छे सुन्दर लेख लिखकर भेजना तथा चित्रादि सा प्रकाशनार्थ जुटाना।

नोट—दस ग्राहक बनानेवाले सहायकोंको 'अनेकान्त' एक वर्ष तक भेंट-स्वरूप भेजा जायगा।

सहायतादि भेजने तथा पत्रव्यवहारका प
मैनेजर 'अनेकान्त'
वीरसेवामन्दिर, १, दरियागंज, दे



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम्

वार्षिक मूल्य ५)

एक किरण का मूल्य ॥)

सम्पादक—जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

| | | |
|---|---|---|
| वर्ष १२ | वीरसेवामन्दिर, १ दरियागंज, देहली | अक्तूबर |
| किरण ५ | आश्विन वीरनि० संवत २४७६, वि० संवत २०१० | १९५३ |


श्रीनेमिचन्द्राचार्य-विरचित

# लघु द्रव्यसंग्रह

[ 'द्रव्यसंग्रह' नामका एक प्राकृत ग्रन्थ जैन समाजमें प्रसिद्ध और प्रचलित है, जिसके अनेक अनुवादोंके साथ कितने ही संस्करण एवं प्रकाशन हो चुके हैं। वह 'वृहद् द्रव्यसंग्रह' कहलाता है; क्योंकि उसकी संस्कृत टीकामें टीकाकार ब्रह्मदेवने यह सूचित किया है कि 'इस द्रव्यसंग्रहके पूर्व ग्रन्थकार श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेवने एक दूसरा लघु द्रव्यसंग्रह सोमश्रेष्ठिके निमित्त रचा था, जिसकी गाथा संख्या २६ थी; पश्चात् विशेषतत्त्वके परिज्ञानार्थ इस बृहद् द्रव्य संग्रहकी रचना की गई है, जिसकी गाथा संख्या ५८ है।' वह लघु द्रव्यसंग्रह अभी तक उपलब्ध नहीं हो रहा था और इसलिये आम तौर पर यह समझा जाता था कि उस लघु द्रव्यसंग्रहमें कुछ गाथाओंकी वृद्धि करके आचार्य महोदयने उसे ही बड़ा रूप दे दिया है— वह अलगसे प्रचारमें नहीं आया है। परन्तु गत वीर-शासन-जयन्तीके अवसरपर श्रीमहावीरजीमें, वहाँ के शास्त्रभण्डारका निरीक्षण करते हुए, वह लघु द्रव्यसंग्रह एक संग्रह ग्रन्थमें मिल गया है, जिसे अनेकान्त पाठकोंकी जानकारीके लिये यहाँ प्रकाशित किया जाता है। इसकी गाथा-संख्या उक्त संग्रह में २५ दी हैं और उन गाथाओंको साफ तौर पर 'सोमच्छलेण रइया' पदोंके द्वारा 'सोम' नामके किसी व्यक्तिके निमित्त रची गई सूचित किया है। साथ ही रचयिताका नाम भी अन्तिम गाथामें 'नेमिचन्द्रगणी' दिया है। हो सकता है प्रति गाथा इस ग्रन्थप्रतिमें छूट गई हो और वह संभवतः १० वीं ११ वीं गाथाओंके मध्यकी वह गाथा जान पड़ती है जो बृहद् द्रव्यसंग्रहमें 'धम्माऽधम्मा कालो' इत्यादिरूपसे नं० २० पर दी हुई है और जिसमें लोकाकाश तथा अलोकाकाश का स्वरूप वर्णित है। क्योंकि धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्योंकी लक्षणपरक तीन गाथाएँ नं० ८, ९, १० और द्रव्य-लक्षण-प्रतिपादिका गाथा नं० ११ का पूर्वार्ध, जो व्यवहारकालसे सम्बन्ध रखता है, इस लघु द्रव्यसंग्रहमें वे ही हैं जो कि बृहद् द्रव्यसंग्रहमें नं० १७, १८, १९ तथा २१ (पूर्वार्ध) पर पाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त १२ वीं और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१४ वीं गाथाएं भी वे ही हैं जो बृ० द्रव्यसंग्रहमें नं० २२, २७ पर पाई जाती हैं। शेष सब गाथाएँ बृहद् द्रव्यसंग्रहसे भिन्न हैं और इससे यह फलित होता है कि लघु द्रव्यसंग्रहमें कुछ गाथाओंकी वृद्धि करके उसे ही बृहद् रूप नहीं दिया गया है बल्कि दोनों को स्वतन्त्र रूपसे ही रचा गया है और इसीसे दोनोंके मंगल पद्य तथा उपसंहारात्मक पद्य भी भिन्न भिन्न हैं। यहां एक बात नोट किये जानेके योग्य है और वह यह कि लघु द्रव्यसंग्रहके मूलमें ग्रंथका नाम 'द्रव्यसंग्रह' नहीं दिया, बल्कि 'पयत्थलक्खणकराओ गाहाओ' पदोंके द्वारा उसे पदार्थोंका लक्षण करने वाली गाथाओंका एक समूह सूचित किया है; जबकि बृहद् द्रव्यसंग्रहमें 'दव्वसंगहमिणं' वाक्यके द्वारा ग्रन्थका नाम स्पष्ट रूपसे 'द्रव्यसंग्रह' दिया है। और इससे ऐसा मालूम होता है कि 'द्रव्यसंग्रह' नामकी कल्पना ग्रन्थकारको अपनी पूर्वरचना के बाद उत्पन्न हुई है और उस द्रव्य संग्रहके बाद ही इस पूर्वरचनाको ग्रन्थकार अथवा दूसरोंके द्वारा 'लघुद्रव्यसंग्रह' कहा गया है चुनांचे इस ग्रन्थकी अन्तिम पुष्पिकामें भी 'लघुद्रव्यसंग्रह' इस नामका उल्लेख पाया जाता है। सारा ग्रंथ अच्छा सरल और सहजबोध-गम्य है। यदि कोई सज्जन चाहेंगे तो इसका सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत कराकर वीरसेवामन्दिरसे प्रकाशित कर दिया जायगा।

—सम्पादक ]

## ( मूल ग्रन्थ )

छद्दव्व पंच अत्थी सत्त वि तच्चाणि णव पयत्था य।
भंगुप्पाय-धुवत्ता णिद्दिट्ठा जेण सो जिणो जयउ ॥१॥
जीवो पुग्गल धम्माऽधम्मागासो तहेव कालो य।
दव्वाणि कालरहिया पदेशबाहुल्लदो अत्थिकाया य ॥२॥
जीवाजीवासवबंध संवरो णिज्जरा तहा मोक्खो।
तच्चाणि सत्त एदे सपुण्ण-पावा पयत्था य ॥३॥
जीवो होइ अमुत्तो सदेहमित्तो सचेयणा कत्ता।
भोत्ता सो पुण दुविहो सिद्धो संसारिओ णाणा ॥४॥
अरसमरूवमगधं अव्वत्तं चेयणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठ-संठाणं ॥५॥
वण्ण-रस-गंध-फासा विज्जंते जस्स जिणवरुद्दिट्ठा।
मुत्तो पुग्गलकाओ पुढवी पहुदी हु सो सोढा ॥६॥
पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसय कम्म परमाणू।
छव्विहभेयं भणियं पुग्गलदव्वं जिणिंदेहिं ॥७॥
गइ परि [ण] याण धम्मो पुग्गल जीवाणगमण-सहयारी
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई ॥८॥
ठाणजुयाण अहम्मो पुग्गलजीवाण ठाण-सहयारी।
छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई ॥ ॥
अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं।
जेण्हं लोगागासं अल्लो (ल्लो) गागासमिदि दुविहं १०॥
दव्वपरियट्टजादो जो सो कालो हवेइ ववहारो।
लोगागासपएसो एक्केक्काऽणू य परमट्ठो ॥११॥
लोयायासपदेसे एक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का।
रयणाणं रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥१ ॥
संखातीदा जीवे धम्माऽधम्मे अणंत आयासे।
संखादासंखादा मुत्ति पदेसाउ संति णो काले ॥१३॥
जावादियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवट्टद्धं।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥१४॥
जीवो णाणी पुग्गल-धम्माऽधम्मायासा तहेव कालो य।
अज्जीवा जिणभणिओ ण हु मण्णइ जो हु सो मिच्छो ॥
मिच्छत्तं हिंसाई कसाय-जोगा य आसवो बंधो।
सकसाई जं जीवो परिगिण्हइ पोग्गलं विविहं ॥१६॥
मिच्छत्ताईचाओ संवर जिण भणइ णिज्जरादेसे।
कम्माण खओ सो पुण अहिलसिओ अणहिलसिओ य ॥
कम्म बंधण-बद्धस्स सब्भूदस्संतरप्पणो।
सव्वकम्म-विणिम्मुक्को मोक्खो होइ जिणेडिदो ॥१८॥
सादाऽऽउ-णामगोदाणं पयडीओ सुहा हवे।
पुण्णं तित्थयरादी अण्णं पावं तु आगमे ॥१९॥
णासइ णर-पज्जाओ उप्पज्जइ देवपज्जओ तत्थ।
जीवो स एव सव्वस्सभंगुप्पाया धुवा एवं ॥२०॥
उप्पादप्पद्धंसा वत्थूणं होंति पज्जय-णाएण।
दव्वट्ठिएण णिच्चा बोधव्वा सव्वजिणवुत्ता ॥२१॥
एवं अहिगयसुत्तो सट्ठाणजुदा मणो णिरुंभित्ता।
छंडउ रायं रोसं जइ इच्छइ कम्मणो णासं ॥२२॥
विसएसु पवट्टंतं चित्त धारेत्तु अप्पणो अप्पा।
झायइ अप्पाणेणं जो सो पावेइ खलु सेयं ॥२३॥
सम्मं जीवादीया णच्चा सम्मं सुकित्तिदा जेहिं।
मोहगयकेसरीणं णमो णमो ठाण साहूणं ॥२४॥
सोमच्छलेण रइया पयत्थ-लक्खणकराउ गाहाओ।
भव्वुवयारणिमित्तं गणिणा सिरिणेमिचंदेण ॥२५॥

इति नेमिचंद्रसूरिकृतं लघुद्रव्यसंग्रहमिदं पूर्णम्।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# समन्तभद्र-वचनामृत

[ ११ ]

स्वामी समन्तभद्रने अपने समीचीन धर्मशास्त्रमें सम्यग्दर्शनके विषयभूत परमार्थ, आप्त, आगम और तपस्वीके लक्षणादिका निर्देश करते हुए जिस अमृतकी वर्षा की है उसका कुछ रसास्वादन आज अनेकान्त-पाठकोंको उक्त धर्मशास्त्रके अप्रकाशित हिन्दी भाष्यसे कराया जाता है। —सम्पादक ]

( परमार्थ आप्त-लक्षण )

आप्तेनोत्सन्न-दोषेण सर्वज्ञेनाऽऽगमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नाऽन्यथा ह्याप्तता भवेत॥५।

'जो उत्सन्न दोष है—राग-द्वेष मोह और काम-क्रोधादि दोषोंको नष्ट कर चुका है—, सर्वज्ञ है—समस्त द्रव्य क्षेत्र-काल-भावका ज्ञाता है— , और आगमेशी है—हेयोपादेयरूप अनेकान्त-तत्त्वके विवेकपूर्वक आत्महितमें प्रवृत्ति करानेवाले अबाधित सिद्धान्त-शास्त्रका स्वामी अथवा मोक्षमार्गका प्रणेता है—वह नियमसे परमार्थ आप्त होता है अन्यथा पारमार्थिक आप्तता बनती ही नहीं—इन तीन गुणोंमेंसे एकके भी न होने पर कोई परमार्थ आप्त नहीं हो सकता, ऐसा नियम है।'

व्याख्या—पूर्वकारिकामें जिस परमार्थ आप्तके श्रद्धानको मुख्यतासे सम्यग्दर्शनमें परिगणित किया है उसके लक्षण का निर्देश करते हुए यहां तीन खास गुणोंका उल्लेख किया गया है, जिनके एकत्र अस्तित्वसे आप्तको पहचाना जा सकता है और वे हैं १ निर्दोषता, २ सर्वज्ञता, ३ आगमेशिता। इन तीनों विशिष्ट गुणोंका यहाँ ठीक क्रमसे निर्देश हुआ है—निर्दोशताके बिना सर्वज्ञता नहीं बनती और सर्वज्ञताके बिना आगमेशिता असम्भव है। निर्दोषता तभी बनती है जब दोषोंके कारणीभूत ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय नामके चारों घातिया कर्म समूल नष्ट हो जाते हैं। ये कर्म बड़े बड़े भूभृतों (पर्वतों)-की उपमाको लिये हुए हैं, उन्हें भेदन करके ही कोई इस निर्दोषताको प्राप्त होता है। इसीसे तत्त्वार्थसूत्रके मंगलाचरणमें इस गुणविशिष्ट आप्तको 'भेत्तारं कर्मभूभृतां' जैसे पदके द्वारा उल्लेखित किया है। साथ ही, सर्वज्ञको 'विश्वतत्त्वानां ज्ञाता' और आगमेशीको 'मोक्षमार्गस्य नेता' पदोंके द्वारा उल्लेखित किया है। आप्तके इन तीनों गुणोंका बड़ा ही युक्तिपुरस्सर एवं रोचक वर्णन श्रीविद्यानंद आचार्यने अपनी आप्तपरीक्षा और उसकी स्वोपज्ञ टीकामें किया है, जिससे ईश्वर-विषयकी भी पूरी जानकारी सामने आ जाती है और जिसका हिन्दी अनुवाद वीरसेवा-मन्दिरसे प्रकाशित हो चुका है। अतः आप्तके इन लक्षणात्मक गुणोंका पूरा परिचय उक्त ग्रन्थसे प्राप्त करना चाहिए। साथ ही, स्वामी समन्तभद्रकी आप्तमीमांसा' को भी देखना चाहिये, जिस पर अकलंकदेवने 'अष्टशती' और विद्यानन्दाचार्यने 'अष्टसहस्री' नामकी महत्वपूर्ण संस्कृत टीका लिखी है।

यहाँ पर इतनी बात और भी जान लेने की है कि इन तीन गुणोंसे भिन्न और जो गुण आप्तके हैं वे सब स्वरूप-विषयक हैं—लक्षणात्मक नहीं। लक्षणका समावेश इन्हीं तीन गुणोंमें होता है। इनमेंसे जो एक भी गुणसे हीन है वह आप्तके रूपमें लक्षित नहीं होता।

( उत्सन्नदोष आप्तस्वरूप )

क्षुत्पिपासा-जरातङ्क-जन्माऽन्तक-भय-स्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः सप्रकीर्त्यते(प्रदोषमुक्)

'जिसके क्षुधा, तृषा, जरा, रोग, जन्म, मरण, भय, मद, राग, द्वेष, मोह तथा ('च' शब्दसे) चिन्ता, अरति, निद्रा, विस्मय, विषाद, स्वेद और खेद ये दोष नहीं होते हैं वह (दोषमुक्त) आप्तके रूपमें प्रकीर्तित होता है।

व्याख्या—यहां दोषरहित आप्तका अथवा उसकी निर्दोषताका स्वरूप बतलाते हुए जिन दोषोंका नामोल्लेख किया गया है वे उस वर्गके हैं जो अष्टादश दोषोंका वर्ग कहलाता है और दिगम्बर मान्यताके अनुरूप है। उन दोषोंमेंसे यहां ग्यारहके तो स्पष्ट नाम दिये हैं, शेष सात दोषों चिन्ता, अरति, निद्रा, विस्मय, विषाद, स्वेद और खेदका 'च' शब्दमें समुच्चय अथवा संग्रह किया गया है। इन दोषोंकी मौजूदगी ( उपस्थिति ) में कोई भी मनुष्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परमार्थ आप्तके रूपमें ख्यातिको प्राप्त नहीं होता—विशेष ख्याति अथवा प्रकीर्तनके योग्य वही होता है जो इन दोषोंसे रहित होता है। सम्भवतः इसी दृष्टिको लेकर यहां 'प्रकीर्त्यते' पदका प्रयोग हुआ जान पड़ता है। अन्यथा इसके स्थान पर 'प्रदोषमुक्' पद ज्यादह अच्छा मालूम देता है।

श्वेताम्बर मान्यताके अनुसार अष्टादश दोषोंके नाम इस प्रकार हैं—

१ वीर्यान्तराय, २ भोगान्तराय, ३ उपभोगान्तराय, ४ दानान्तराय, ५ लाभान्तराय. ६ निद्रा, ७ भय, ८ अज्ञान, ९ जुगुप्सा १० हास्य ११ रति, १२ अरति, १३ राग, १४ द्वेष, १५ अविरति, १६ काम, १७ शोक, १८ मिथ्यात्व * ।

इनमेंसे कोई भी दोष ऐसा नहीं है जिसका दिगम्बर समाज आप्तमें सद्भाव मानता हो। समान दोषोंको छोड़कर शेषका अभाव उसके दूसरे वर्गोंमें शामिल है जैसे अंतराय कर्मके अभावमें पाँचों अन्तराय दोषोंका, ज्ञानावरण कर्मके अभावमें अज्ञान दोषका और दर्शनमोह तथा चारित्र मोहके अभावमें शेष मिथ्यात्व, शोक, काम अविरति रति, हास्य, और जुगुप्सा दोषोंका अभाव शामिल है। श्वेतांबर मान्य दोषोंमें क्षुधा तृषा, तथा रोगादिक कितने ही दिगंबर मान्य दोषोंका समावेश नहीं होता—श्वेतांबर भाई आप्तमें उन दोषोंका सद्भाव मानते हैं और यह सब अन्तर उनके प्रायः सिद्धान्त-भेदोंपर अवलम्बित है। सम्भव है इस भेददृष्टि तथा उत्सन्नदोष आप्तके विषयमें अपनी मान्यताको स्पष्ट करनेके लिए ही इस कारिकाका अवतार हुआ हो। इस कारिकाके सम्बन्धमें विशेषविचारके लिये ग्रन्थकी प्रस्तावनाको देखना चाहिए।

(आप्त-नामावली)

परमेष्ठी परंज्योतिर्विरागो विमलः कृती।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः सार्वः शास्तोपलाल्यते ॥७॥

'उक्त स्वरूपको लिये हुए जो आप्त है वह परमेष्ठी (परम पदमें स्थित), परंज्योति (परमातिशयप्राप्त ज्ञानधारी), विराग (रागादि भावकर्मरहित), विमल (ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मवर्जित), कृती (हेयोपादेयतत्त्व-विवेक-सम्पन्न अथवा कृतकृत्य), सर्वज्ञ (यथावत् निखिलार्थ-साक्षात्कारी), अनादिमध्यान्त (आदि मध्य और अन्तसे शून्य), सार्व (सर्वके हितरूप), और शास्ता (यथार्थ तत्त्वोपदेशक) इन नामोंसे उपलक्षित होता है। अर्थात् ये नाम उक्त स्वरूप आप्तके बोधक हैं।'

व्याख्या—आप्तदेवके गुणोंकी अपेक्षा बहुत नाम हैं—अनेक सहस्रनामों-द्वारा उनके हजारों नामोंका कीर्तन किया जाता है। यहाँ ग्रंथकारमहोदयने अतिसंक्षेपसे अपनी रुचि तथा आवश्यकताके अनुसार आठ नामोंका उल्लेख किया है, जिनमें आप्तके उक्त तीनों लक्षणात्मक गुणोंका समावेश है—किसी नाममें गुणकी कोई दृष्टि प्रधान है, किसीमें दूसरी और कोई संयुक्त दृष्टिको लिये हुए हैं। जैसे 'परमेष्ठी' और 'कृती' ये संयुक्त दृष्टिको लिए हुए नाम हैं, 'परंज्योति' और 'सर्वज्ञ' ये नाम सर्वज्ञत्वकी दृष्टिको प्रधान किए हुए हैं। इसी तरह 'विराग' और 'विमल' ये नाम उत्सन्नदोषत्वकी दृष्टिको और 'सार्व' तथा 'शास्ता' ये नाम आगमेशित्वकी दृष्टिको मुख्य किए हुए हैं। इस प्रकारकी नाममाला देनेकी प्राचीन कालमें कुछ पद्धति रही जान पड़ती है, जिसका एक उदाहरण ग्रन्थकारमहोदयसे पूर्ववर्ती आचार्य कुन्दकुन्दके 'मोक्खपाहुड' में और दूसरा उत्तरवर्ती आचार्य पूज्यपाद (देवनन्दी) के 'समाधितंत्र' में पाया जाता है। इन दोनों ग्रन्थोंमें परमात्माका स्वरूप देनेके अनन्तर उसकी नाममालाका उल्लेख किया गया है ×। टीकाकार प्रभाचन्द्रने 'आप्तस्यवाचिकां नाममालां प्ररूपयन्नाह' इस वाक्यके द्वारा इसे आप्तकी नाममाला तो लिखा है परन्तु साथ ही आप्तका एक विशेषण 'उक्तदोषैर्विवर्जितस्य' भी दिया है, जिसका कारण पूर्वमें उत्सन्नदोषकी दृष्टिसे आप्तके लक्षणात्मक पद्यका होना कहा जासकता है; अन्यथा यह नाममाला एक मात्र उत्सन्नदोष आप्तकी दृष्टि-को लिए हुए नहीं कही जा सकती, जैसा कि ऊपर दृष्टिके कुछ स्पष्टीकरणसे जाना जाता है।

* देखो, विवेकविलास और जैनतत्त्वादर्श आदि।

× उल्लेख क्रमशः इस प्रकार हैः—

"मलरहिओ कलचत्तो अणिंदिओ केवलो विसुद्धप्पा।
परमेट्ठी परमजिणो सिवंकरो सासओ सिद्धो ॥६॥"

(मोक्खपाहुड)

'निर्मलः केवलः शुद्धो विविक्तः प्रभुरव्ययः।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः।६। (समाधितंत्र)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहां 'अनादिमध्यान्तः' पदमें उसकी दृष्टिके स्पष्ट होनेकी जरूरत है। सिद्धसेनाचार्यने अपनी स्वयंभूस्तुति नामकी द्वात्रिंशिकामें भी आप्तके लिये इस विशेषणका प्रयोग किया है और अन्यत्र भी शुद्धात्माके लिये इसका प्रयोग पाया जाता है। उक्त टीकाकारने 'प्रवाहापेक्षया' आप्तको अनादिमध्यान्त बतलाया है परन्तु प्रवाहकी अपेक्षासे तो और भी कितनी ही वस्तुएं आदि मध्य तथा अन्तसे रहित हैं तब इस विशेषणसे आप्त कैसे उपलक्षित होता है यह भले प्रकार स्पष्ट किये जानेके योग्य है।

वीतराग होते हुए आप्त आगमेशी (हितोपदेशी) कैसे हो सकता है? अथवा उसके हितोपदेशका क्या कोई आत्म-प्रयोजन होता है? इसका स्पष्टीकरण –

**अनात्मार्थं विना रागैः शास्ता शास्ति सतोहितम्।**
**ध्वनन् शिल्पि-कर-स्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते ॥८॥**

'शास्ता-आप्त विना रागोंके—मोहके परिणामस्वरूप स्नेहादिके वशवर्ती हुए विना अथवा ख्याति-लाभ-पूजादिकी इच्छाओंके विना ही—और विना आत्मप्रयोजन के भव्य-जीवोंको हितकी शिक्षा देता है। (इसमें आपत्ति या विप्रतिपत्तिकी कोई बात नहीं है) शिल्पीके कर-स्पर्शको पाकर शब्द करता हुआ मृदंग क्या रागभावोंकी तथा आत्मप्रयोजनकी कुछ अपेक्षा रखता है? नहीं रखता।'

व्याख्या—जिस प्रकार मृदंग शिल्पीके हाथके स्पर्श रूप बाह्य निमित्तको पाकर शब्द करता है और उस शब्दके करनेमें उसका कोई रागभाव नहीं होता और न अपना कोई निजी प्रयोजन ही होता है—उसकी वह सब प्रवृत्ति स्वभावतः परोपकारार्थ होती है—उसी प्रकार वीतराग आप्तके हितोपदेश एवं आगम-प्रणयनका रहस्य है—उसमें वैसे किसी रागभाव या आत्मप्रयोजनकी आवश्यकता नहीं, वह 'तीर्थंकरप्रकृति' नामकर्मके उदयरूप निमित्तको पाकर तथा भव्यजीवोंके पुण्योदय एवं प्रश्नानुरोधके वश स्वतः प्रवृत्त होता है।

आगे सम्यग्दर्शनके विषयभूत परमार्थ 'आगम' का लक्षण प्रतिपादन करते हैं—

( आगम-शास्त्र-लक्षण )

**आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्ट-विरोधकम्।**
**तत्त्वोपदेशकृत् सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥९॥**

'जो आप्तोपज्ञ हो—आप्तके द्वारा प्रथमतः ज्ञात होकर उपदिष्ट हुआ हो, अनुल्लंघ्य हो—उल्लंघनीय अथवा खण्डनीय न होकर ग्राह्य हो, दृष्ट (प्रत्यक्ष) और इष्ट (अनुमानादि-विषयक स्वसम्मत सिद्धान्त) का विरोधक न हो, प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे जिसमें कोई बाधा न आती हो और न पूर्वापरका विरोध ही पाया जाता हो, तत्त्वोपदेशका कर्ता हो—वस्तुके यथार्थ स्वरूपका प्रतिपादक हो, सबके लिये हितरूप हो और कुमार्गका निराकरण करनेवाला हो, उसे शास्त्र—परमार्थ आगम—कहते हैं।'

व्याख्या—यहाँ आगम--शास्त्रके छह विशेषण दिये गये हैं, जिनमें आप्तोपज्ञ' विशेषण सर्वोपरि मुख्य है और इस बातको सूचित करता है कि आगम आप्तपुरुषके द्वारा प्रथमतः ज्ञात होकर उपदिष्ट होता है। आप्तपुरुष सर्वज्ञ होनेसे आगम विषयका पूर्ण प्रामाणिक ज्ञान रखता है और राग-द्वेषादि सम्पूर्ण दोषोंसे रहित होनेके कारण उसके द्वारा सत्यता एवं यथार्थताके विरुद्ध कोई प्रणयन नहीं बन सकता। साथ ही प्रणयनकी शक्तिसे वह सम्पन्न होता है। इन्हीं सब बातोंको लेकर पूर्वकारिका (५) में उसे आगमेशी' कहा गया है—वही अर्थतः आगमके प्रणयनका अधिकारी होता है। ऐसी स्थितिमें यह प्रथम विशेषण ही पर्याप्त हो सकता था और इसी दृष्टिको लेकर अन्यत्र 'आगमो ह्याप्तवचनम्' जैसे वाक्योंके द्वारा आगमके स्वरूपका निर्देश किया भी गया है; तब यहां पाँच विशेषण और साथमें क्यों जोड़े गए हैं? यह एक प्रश्न पैदा होता है। इसके उत्तरमें मैं इस समय सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि लोकमें अनेकोंने अनेकको स्वयं अथवा उनके भक्तोंने उन्हें 'आप्त' घोषित किया है और उनके आगमोंमें परस्पर विरोध पाया जाता है, जबकि सत्यार्थ आप्तों अथवा निर्दोष सर्वज्ञोंके आगमोंमें विरोधके लिये कोई स्थान नहीं है, वे अन्यथावादी नहीं होते। इसके सिवा कितने ही शास्त्र वर्दको सत्यार्थ आप्तोंके नाम पर रचे गये हैं और कितने ही सत्य शास्त्रोंमें बादको ज्ञाताऽज्ञातभावसे मिलावटें भी हुई हैं। ऐसी हालतमें किस शास्त्र अथवा कथनको आप्तोपज्ञ समझा जाय और किसको नहीं, यह समस्या खड़ी होती है। उसी समस्याको हल करनेके लिए यहां उत्तरवर्ती पांच विशेषणोंकी योजना हुई जान पड़ती है। वे आप्तोपज्ञकी जाँचके साधन हैं अथवा यों कहिए कि आप्तोपज्ञ-विषयको स्पष्ट करनेवाले हैं—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह बतलाते हैं कि आप्तोपज्ञ वही होता है जो इन विशेषणोंसे विशिष्ट होता है. जो शास्त्र इन विशेषणोंसे विशिष्ट नहीं हैं वे आप्तोपज्ञ अथवा आगम कहे जानेके योग्य नहीं हैं। उदाहरणके लिये शास्त्रका कोई कथन यदि प्रत्यक्षादिके विरुद्ध जाता है तो समझना चाहिये कि वह आप्तोपज्ञ (निर्दोष एवं सर्वज्ञदेवके द्वारा उपदिष्ट) नहीं है और इसलिये आगमके रूपमें मान्य किये जानेके योग्य नहीं।

(तपस्वि-लक्षण)

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञान-ध्यान-तपोरत्न(क्त)स्तपस्वी स प्रशस्यते।१०

'जो विषयाशाकी अधीनतासे रहित है—इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त नहीं और न आशा-तृष्णाके चक्करमें ही पड़ा हुआ है अथवा विषयोंकी वांछा तकके वशवर्ती नहीं है—, निरारम्भ है—कृषि-वाणिज्यादिरूप सावद्यकर्मके व्यापारमें प्रवृत्त नहीं होता—, अपरिग्रही है—धन-धान्यादि बाह्य परिग्रह नहीं रखता और न मिथ्यादर्शन, राग-द्वेष, मोह तथा काम-क्रोधादिरूप अन्तरंग परिग्रहसे अभिभूत ही होता है—और ज्ञानरत्न-ध्यानरत्न तथा तपरत्नका धारक है अथवा ज्ञान, ध्यान और तपमें लीन रहता है—सम्यक् ज्ञानका आराधन, प्रशस्त ध्यानका साधन और अनशनादि समीचीन तपोंका अनुष्ठान बड़े अनुरागके साथ करता है—वह (परमार्थ) तपस्वी प्रशंसनीय होता है।

व्याख्या—यहां तपस्वीके 'विषयाशावशातीत' आदि जो चार विशेषण दिये गये हैं वे बड़े ही महत्वको लिये हुए हैं और उनसे सम्यग्दर्शनके विषयभूत परमार्थ तपस्वी की वह सारी दृष्टि सामने आ जाती है जो उसे श्रद्धाका विषय बनाती है। इन विशेषणोंका क्रम भी महत्वपूर्ण है। सबसे पहले तपस्वीके लिये विषय-तृष्णाकी वशवर्तितासे रहित होना परमावश्यक है। जो इन्द्रिय-विषयोंकी तृष्णाके जालमें फँसे रहते हैं वे निरारम्भी नहीं हो पाते, जो आरम्भोंसे मुख न मोड़ कर उनमें सदा संलग्न रहते हैं वे अपरिग्रही नहीं बन पाते, और जो अपरिग्रही न बनकर सदा परिग्रहोंकी चिन्ता एवं ममतासे घिरे रहते हैं वे रत्न कहलाने योग्य उत्तम ज्ञान ध्यान एवं तपके स्वामी नहीं बन सकते अथवा उनकी साधनामें लीन नहीं हो सकते, और इसतरह वे सत्श्रद्धाके पात्र ही नहीं रहते—उन पर विश्वास करके धर्मका कोई भी अनुष्ठान समीचीनरीतिसे अथवा भले प्रकार नहीं किया जा सकता। इन गुणोंसे विहीन जो तपस्वी कहलाते हैं वे पत्थरकी उस नौकाके समान हैं जो आप डूबती हैं और साथमें आश्रितोंको भी ले डूबती है।

ध्यान यद्यपि अन्तरंग तपका ही एक भेद है फिर भी उसे अलगसे जो यहां ग्रहण किया गया है वह उसकी प्रधानताको बतलानेके लिये है। इसी तरह स्वाध्याय नामके अन्तरंग तपमें ज्ञानका समावेश हो जाता है, उसकी भी प्रधानताको बतलानेके लिये उसका अलगसे निर्देश किया गया है। इन दोनोंकी अच्छी साधनाके विना कोई सत्साधु श्रमण या परमार्थ तपस्वी बनता ही नहीं—सारी तपस्याका चरम लक्ष्य प्रशस्त ध्यान और ज्ञानकी साधना ही होता है।

—युगवीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# राजस्थानके जैन शास्त्र भण्डारोंमें उपलब्ध महत्वपूर्ण ग्रन्थ

( ले० कस्तूरचन्द कासलीवाल एम० ए० जयपुर )

भारतके अन्य प्रान्तोंकी तरह राजस्थानकी महत्ता लोकमें प्रसिद्ध है। वहाँ भारतीय पुरातत्वके साथ जैन-पुरातत्वकी कमी नहीं है। बड़ालीसे जैनियोंका सबसे प्राचीन शिलालेख प्राप्त हुआ है जो वी० नि० संवत् ८४ का है टोंक स्टेटमें अभी हाल ही में ६ जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। जो संवत् १४७० की हैं अजमेर और जयपुरादिमें प्रचुर सामग्री आज भी उपलब्धहो है राजपूतानेके कलापूर्ण मन्दिर भी प्रसिद्ध हैं। उनमें सांगा नेरके संगहोके मंदिरकी कला खास तौर से दर्शनीय है। इन सब उल्लेखोंसे राजस्थानका गौरव जैन साहित्यमें उद्दीपित है। राजस्थानके दि० श्वेताम्बर शास्त्र भण्डार अक्षुण्ण ज्ञानकी निधि हैं।

राजस्थानके उन जैन मन्दिरों एवं उपाश्रयोंमें स्थित शास्त्र भण्डारोंमें हजारोंकी तादादमें हस्तलिखित ग्रन्थ विद्यमान हैं। जैनोंके इन ज्ञान भण्डारोंमें जैन एवं जैनेतर साहित्यके सभी अंगों पर ग्रन्थोंका संग्रह मिलता है, क्योंकि जैनाचार्यों-में साम्प्रदायिकतासे दूर रह कर उत्तम साहित्यके संग्रह करनेकी अभिरुचि थी और इसीके फलस्वरूप हमें आज प्रायः सभी नगरों एवं ग्रामोंमें शास्त्रभण्डार एवं इनमें सभी विषयों पर शास्त्र मिलते हैं। दि० जैन साहित्यकी प्रचुर रचना राजस्थानमें हुई है। जिसके सम्बन्धमें स्वतंत्र लेख द्वारा परिचय करानेकी आवश्यकता है। राजस्थानके इन भण्डारोंमें उपलब्ध ग्रन्थोंकी कोई ऐसी सूची या तालिका, जो अपने विषयमें पूर्ण हो अभी तक प्रकाशित हुई हो ऐसा देखनेमें नहीं आया, जिससे यह पता चल सके कि अमुक अमुक स्थान पर किस किस विषयका कितना और कैसा साहित्य उपलब्ध है ? जिससे आवश्यकता होने पर उसका यथेष्ट उपयोग किया जा सके मेरे अनुमानसे राजस्थानके केवल दिगम्बर जैन शास्त्रभंडारोंमें ही ५०-६० हजारसे अधिक हस्तलिखित ग्रन्थ होंगे। जिसके विषयमें अभी तक कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। श्वेताम्बरीय ज्ञान भण्डारोंकी सूचियां बन गई है राजस्थानीय पत्रिकाओं उनमेंसे अधिकांशका परिचय भी निकल चुका है राजस्थानके इन भण्डारोंमें स्थित ग्रन्थोंकी सूची बड़ी आवश्यक है जिसकी कमीका बहुत वर्षोंसे अनुभव किया जा रहा है। दिगम्बर विद्वानों द्वारा सूची तैयार करने एवं उसे शीघ्र प्रकाशित करनेका प्रयत्न भी किया जा रहा है। साहित्य प्रकाशनकी महती आवश्यकताको समझते हुये श्री दिगम्बर जैन अ० क्षेत्रके प्रबन्धकोंने साहित्योद्धार-का कुछ कार्य अपने हाथमें लिया और इसके अन्तर्गत प्राचीन साहित्यके प्रकाशनका कार्य भी प्रारम्भ किया, जो ४-५ वर्षोंसे चल रहा है। श्री आमेर शास्त्रभण्डार एवं श्री महावीरजीके शास्त्र भण्डारकी ग्रन्थ-सूची प्रकाशित हो चुकी है तथा अब राजस्थानके प्रायः सभी ग्रन्थ भण्डारोंकी सूची प्रकाशित करवानेका कार्य चालू है। प्रारम्भमें जयपुरके शास्त्रभण्डारोंकी सूची प्रकाशनका कार्य हाथमें लिया गया है। अभी तक जयपुरके तीन मन्दिरोंमें स्थित शास्त्रभण्डारोंकी सूची तैयार हुई है तथा उसे प्रकाशनार्थ प्रेसमें भी दे दिया गया है। आशा है कि वह सूची २-३ महिनोंके बाद प्रकाशित हो जावेगी।

ग्रन्थ सूची बनानेके अवसर पर मुझे कितने ही ऐसे ग्रन्थ मिले हैं जिनके विषयमें अन्यत्र कहीं भी उल्लेख तक नहीं मिला, तथा कितने ही ग्रन्थ लेखक प्रशस्तियों आदिके कारण बहुत ही महत्वपूर्ण जान पड़े हैं इसलिये उन सभी उपलब्ध ग्रन्थोंका परिचय देनेके लिये एक छोटी सी लेखमाला प्रारम्भ की जारही है जिसमें उन सभी महत्वपूर्ण ग्रन्थोंका संक्षिप्त परिचय दिया जावेगा। आशा है पाठक इससे लाभ उठायेंगे। सबसे पहिले अपभ्रंश साहित्यको ही लिया जाता है :—

## पउमचरिय ( रामायण ) टिप्पण

महाकवि स्वयम्भू त्रिभुवनस्वयम्भू कृत पउमचरिय ( पद्मचरित्र ) अपभ्रंश भाषाकी उपलब्ध रचनाओंमें सबसे प्राचीन एवं उत्तम रचना है। यह एक महाकाव्य है जिसे जैन रामायण कहा जाता है। अपभ्रंश भाषासे संस्कृतमें टिप्पण अथवा टीका इसी महाकाव्य पर बड़े मन्दिरके शास्त्रभण्डारमें उपलब्ध हुई है। पउमचरिय पर मिलने वाले इस टिप्पण ग्रन्थका अभी किसी भी विद्वान्ने शायद ही कहीं उल्लेख किया हो, इसलिए यह टीका सर्वथा एक नवीन खोज है।

पउमचरिय पर यह टिप्पण किस विद्वान अथवा आचार्यने लिखा है इसके सम्बन्धमें इस टिप्पणमें कहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोई उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु यह प्रति बहुत प्राचीन है इसलिये इसका टीकाकार भी कोई प्राचीन आचार्य एवं विद्वान् होना चाहिए ऐसा अनुमान किया जा सकता है टीकाकारने पउमचरियमेंसे अपभ्रंशके कठिन शब्दोंको लेकर उनकी संस्कृत भाषामें टीका अथवा पर्यायवाची शब्द लिख दिये हैं। टीका विशेष विस्तृत नहीं है। पउम चरियकी ९० सन्धियोंकी टीका केवल ५९ पत्रोंमें ही समाप्त कर दी गई है।

प्रति बहुत प्राचीन है तथा वह अत्यधिक जीर्ण हो चुकी है इसलिए इसकी प्रतिलिपि होना आवश्यक है। इसके बीचके कितने ही पत्र फट गये हैं तथा शेष पत्र भी उसी अवस्थामें होते जा रहे हैं। यह प्रति शास्त्रभण्डार-की बोरियोंमें बंधे हुये तथा बेकार समझे जाने वाले स्फुट त्रुटित एवं जीर्ण-शीर्ण पत्रोंमें बिखरी हुई थी। तथा इन पत्रोंको देखनेके समय यह प्रति मिली थी। यह टीका पउमचरियके सम्पादनके समय बहुत उपयोगी सिद्ध होगी ऐसा मेरा अनुमान है।

टिप्पणकारने टीका प्रारम्भ करनेके पूर्व निम्न प्रकार मंगलाचरण किया है—

स्वयंभुवं महावीरं प्रणिपत्य जगद्गुरूं।
रामायणस्य वक्ष्यामि टिप्पणं मतिशक्तितः॥

इस संस्कृत टिप्पणका एक उदाहरण देखिये—

तृतीय संधिका प्रथम कडवक—

गयसंतो—गतश्रमो अथवा गते ज्ञाने खांतमनो यस्य स गत खांतः। महु मधूकः। माहवी अति मुक्तकलता। कुडं-गेहिं केदारैः। असत्थो पिप्पलः। खजूरि—पिंडखजूरी। मालूर। कपित्थ। सिरि विल्व। भूय विभीतकः। अवरहिमि जाईहि-अपर पुष्पजाति। वणवणियहिं वनस्त्रियः। मोरउ पिच्छ छत्रं॥ १॥

अन्तिम सन्धि—

जए जगति। मेहलियए भार्यया। णिएणासिय सिय लक्ष्मी निर्नाशितः। दुइमुणि द्युतिनामा मुनि णिवहालउ समूहस्थानः। घण मेघसिंहः। हरि मांडूक। महच्छुह महत् क्षुधा। दंडसट्ठिसयतणु क्रोशत्रय—शरीर प्रमाणं। हरि-खित्ते भोगभूमि सुरपुरिहि हो संति इन्द्र भविष्यंति। णामें इन्द्ररथांभोजरथ नामनौ। सुमणु देवः पावमहीहय पाया पर्वते। वरसत्तउ उत्तमसंघ। मेहरउ मेघनादनाम। इति रामायणे नवति संधिः समाप्तः।

## गेमिणाह चरिउ (कवि दामोदर)

( २ )

यह ग्रन्थ अपभ्रंश भाषामें रचा गया है इसके कर्ता महाकवि दामोदर हैं। यह ग्रंथ प्राप्ति भी जयपुरके बड़े मन्दिरजीके शास्त्रभंडारमें उपलब्ध हुई है। इसकी रचना महामुनि कमल भद्रके सम्मुख एवं पंडित रामचंद्रके आशीर्वादसे समाप्त हुई थी ऐसा ग्रन्थ प्रतिक पुष्पिका वाक्यसे स्पष्ट है। प्रति अपूर्ण है तथा जीर्ण अवस्थामें है। रचनाकालके विषयमें इससे कोई सहायता नहीं मिलती।

यद्यपि यह ग्रंथ कमसे कम ४-५ संधियोंमें विभक्त होगा लेकिन उपलब्ध प्रतिके कडवकोंकी संख्या संधिके अनुसार न चलकर एक साथ चलती है। ४४वें पत्र पर ११७ कडवक हैं। इस प्रतिमें तीन संधियां प्राप्त हैं चूंकि ग्रंथ प्रति अपूर्ण है इसलिए ग्रंथमें अन्य संधियाँ भी होनी चाहिए। प्रथम संधिमें मुख्यतः नेमिनाथ स्वामीकी जन्मोत्पत्ति, द्वितीय संधिमें जरासंध और कृष्णका संग्राम तथा तृतीय संधिमें भगवान् नेमिनाथ-के विवाहका वर्णन दिया हुआ है। इस प्रकार ग्रंथमें दो संधियाँ और होंगी जिनमें नेमिनाथ स्वामीके वैराग्य एवं मोक्ष गमन आदिका वर्णन होगा। प्रथम संधिकी समाप्ति पुष्पिका इस प्रकार है—इह णेमिणाहचरिए महामुणि-कम्बलभद्द पसक्खे महाकइ कणिट्ठ दामोयर विरइए पंडिय रामचंद्रआएसिए मल्हसु अवगाएउ आयंणिणाए जम्मुपत्ति णामा पढमो संधि परिच्छेओ सम्मत्तो।

ग्रंथप्रतिका शेष भाग अन्वेषणीय है। यह संभवतः पत्र टूट जाने या दीमक आदिके द्वारा खण्डित हुआ है। अतः इसकी दूसरी प्रतिके लिये अन्वेषण करनेकी बड़ी जरूरत है।

## बारहखड़ी दोहा

( ३

अपभ्रंश भाषामें बारहखड़ीके रूपमें आध्यात्मिक एवं सुभाषित दोहोंकी रचना है। दोहे अच्छे एवं पठनीय जान पड़ते हैं। इस ग्रंथके कर्त्ता महाचंद कवि हैं। आप कब और कहाँ हुये, इसका रचनामें कोई उल्लेख नहीं मिलता लेकिन इतना अवश्य है कि कवि संवत् १५९१ के पूर्ववर्ती हैं क्योंकि बड़े मन्दिरके शास्त्रभण्डारमें उपलब्ध प्रति इसी समयकी है। प्रति पूर्ण है एवं दोहोंकी संख्या ३३५ है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह प्रति संवत् १५९१ पौष सुदी १२ वृहस्पतवारकी लिखी हुई है। श्री चाहड सौगाणीने कर्मक्षय निमित्त इसकी प्रतिलिपि की थी। भट्टारक परम्परामें लिपिकारने भट्टारक जिनचन्द्र एवं उनके शिष्य रत्नकीर्तिका उल्लेख किया है।

कविने निम्न दोहेसे बारहखड़ी प्रारम्भ की है—

वारह विउणा जिण णवम्मि किय वारहखरकक्कु।
महियंदण भवियणहो णिसुणहु थिरु मणु लक्कु॥
भव-दुक्खह निविण्णएण 'वीरचन्द' सिस्सेण।
भवियह पडिबोहण कया दोहा कक्कमिसेण॥
एकजु आखरूसार दुइज जण तिण्णि वि मिल्लि।
चउवीसग्गल तिण्णिसय विरइए दोहा विल्लि॥
सो दोहउ अप्पाणयहु दोहा जाण मुणेइ।
मुणि महयंदिण भासियउ सुणि णिय चित्त धरेइ॥

अब बारहखड़ीके कुछ दोहे पाठकोंके अवलोकनार्थ उपस्थित किये जाते हैं जिससे वे रचनाकी भाषा, शैली एवं उसमें वर्णित विषयके सम्बन्धमें कुछ अधिक जानकारी प्राप्त कर सकें—

कायहो सारउ एय जिय पंचमहाणु वयाइ।
अलिउ कलेवरू भार तहु जेहि ण धरियइ ताइ॥

× × ×

खणि खणि खिज्जइ आवतसु णियडउ होइ कयंतु।
तहि वण थक्कइ मोहियउ मे मे जीउ भणंतु॥

× × ×

गीलइ गुडि जिम माछपहि पावसि पडि वि मरंति।
तिम भुवि महयंदिण कहिय जे तिय संगु करंति॥

× × ×

ते किं देवें कि गुरूणा धम्मेण य किं तेण।
अप्पण चित्तह णिम्मलउ पंचउ होइ ण जेण॥

× × ×

मे परियणु मे धणणु धणु मे सुव मे दाराइं।
इउ चिंतंतह जीव तुहु गय भव-कोडिसयाइं॥

## सांतिणाहचरिउ (शुभकीर्ति)

( ४ )

उक्त रचना नागौर (राजस्थान) के प्रसिद्ध भट्टारकीय शास्त्र भंडारमें उपलब्ध हुई है। नागौर शास्त्र भंडारकी जो ग्रन्थ-सूची आजकल तैयार की जा रही है उसीके सम्बन्धमें मुझे नागौर जाकर ग्रन्थ भण्डार एवं सूचीके कार्यको देखनेका सुअवसर मिला था। उसी समय यह रचना भी देखनेमें आयी।

शांतिनाथचरित्रके रचयिता श्री शुभकीर्ति देव हैं। कविने अपने नामके पूर्व उभय भाषा चक्कवट्टि अर्थात् उभयभाषा चकवर्ति यह विशेषण लगाया है इसलिये सम्भव है कि शुभकीर्ति संस्कृत एवं अपभ्रंश भाषाके विद्वान हों। इन्होंने अपनी रचनाको महाकाव्य लिखा है। और बहुत कुछ अंशोंमें यह सत्य भी जानपड़ता है। शांतिनाथ-चरित्रकी रचना रूपचन्दके अनुरोध पर की गयी है जैसा कि कविके निम्न उल्लेख स्पष्ट है।

इस महाकाव्यमें १९ संधियां हैं जिनमें शांतिनाथके जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। प्रथम और अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—

प्रथम संधि—

इयि उभयभासा चक्कवट्टि सिरि सुहकित्तिदेव विरइए महाभव्व सिरिरुवचंद मण्णिए महाकव्वे सिरि विजय बंभणो णाम पढमो संधि सम्मत्तो।

अन्तिम संधि—

इयि उभयभाषा चक्कवट्टि सिरि सुहकित्तिदेव विरइए महाभव्व सिरिरुवचंद मण्णिए महाकव्वे सिरि सांतिणाह-चचक्काउह कुमार णिव्वाण गमणं णाम इगुणीसमो संधि समत्तो।

नागौर शास्त्र भण्डारकी यह प्रति सम्वत् १५५१ ज्येष्ठ सुदी १० बुधवारकी लिखी हुई है। इसकी प्रति लिपि भट्टारक जिनचन्द्रदेवके शिष्य ब्र० वीरु तथा ब्रह्म लालाने अपने पढ़ने के लिये करवायी थी प्रतिपूर्ण और सामान्य अवस्था में है।

## योगसार ( श्रुतकीर्ति )

( ५ )

भ० श्रुतकीर्तिकी तीन रचनाओंका—धर्मपरीक्षा, हरिवंशपुराण और परमेष्ठिप्रकाशसार का—डा०हीरालालजी जैन प्रो० नागपुर विश्वविद्यालयने अनेकान्त वर्ष ११ किरण २ में उल्लेख किया था। योगसार' के सम्बन्धमें डाक्टर साहबने कोई उल्लेख नहीं किया, इसलिए यह श्रुतकीर्ति की चौथी रचना है जिसका हमें अभी अभी परिचय मिला है यह रचना नई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रचनाका नाम योगशास्त्र है। इसमें दो सन्धियाँ है। प्रथम सन्धिमें ६४ कडवक और द्वितीय सन्धिमें ७२ कडवक है इस प्रकार यह काव्य १३६ कडवकमें समाप्त होता है। रचनाकी केवल एक ही प्रति बड़े मन्दिरमें मिली है। इसके ६७ पत्र हैं। प्रतिका अन्तिम पत्र जिस पर ग्रंथ प्रशस्ति वाला भाग है जीर्ण होकर फट गया है इससे सबसे बड़ी हानि तो यह हुई कि रचनाकाल वाला अंश भी कहीं फटकर गिर गया है।

ग्रन्थमें योगधर्मका वर्णन किया गया है मंगलाचरणके पश्चात् ही कविने योगकी प्रशंसामें लिखा है। कि योग ही भव्य जीवोंको भवोदधिसे पार करनेके लिए एक मात्र सहारा है।

सव्वह धम्म-जोउ जगिसारउ, जो भव्वयण भवोवहितारउ

प्राणायाम आदि क्रियाओंका वर्णन करनेके पश्चात् कविने योगावस्थामें लोकका चिन्तन करनेके लिये कहा है और अपनी इस रचनाके ५० से अधिक कडवकोंमें तीन लोकोंके स्वरूपका वर्णन किया है।

दूसरी सन्धिमें धर्मका वर्णन किया गया है। इसमें षोडशकारणभावना, दस धर्म, चौदह मार्गणा तथा १४ गुणस्थानोंका वर्णन है। ६० वें कडवकसे आगे कविने भगवान महावीरके पश्चात् होने वाले केवली श्रुतकेवली आदिके नामोंका उल्लेख किया है इसके पश्चात् भद्रबाहु स्वामीका दक्षिण विहार श्वेताम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्ति आदि पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। कुन्दकुन्द—भूतबलि पुष्पदंत, णेमिचन्द्र उमास्वामि,—वसुनन्दि, जिनसेन, पद्मनन्दि, शुभचन्द्र आदि आचार्योंका नाम उनकी रचनाओंके नामों सहित उल्लेखित किया है। यही नहीं किन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके उत्पन्न होनेके पश्चात् दिगम्बर आचार्योंने किस प्रकार दिन रात परिश्रम करके सिद्धान्त ग्रन्थोंकी रचना की तथा किस प्रकार दिगम्बर समाज चार संघोंमें विभाजित हुआ आदिका भी कविने उल्लेख किया है। इस प्रकार ६० से आगेके कडवक ऐतिहासिक दृष्टिसे बहुत ही महत्वपूर्ण हैं[1]।

योगशास्त्रकी ग्रन्थ प्रशस्ति भी महत्वपूर्ण है। इसमें कविने अपनी तीन अन्य रचनाओंका उल्लेख किया है। ग्रन्थ प्रशस्तिसे हमें निम्न बातोंका ज्ञान होता है—

(१) श्रुतकीर्ति भ० देवेन्द्रकीर्तिके प्रशिष्य एवं त्रिभुवन कीर्तिके शिष्य थे।

(२) श्रुतकीर्तिके योगशास्त्रकी रचना जेरहट नगरमें नेमिनाथ स्वामीके मन्दिरमें सं० १५……मंगसिर सुदी ५ के दिन समाप्त हुई थी।

शास्त्र भण्डारमें प्राप्त योगशास्त्रकी प्रतिलिपि सं० १५५२ माघ सुदी ५ सोमवारकी लिखी हुई है। लेखक प्रशस्तिके आधार पर यह शंका उत्पन्न होती है कि जब हरिवंशपुराणकी रचना संवत् १५५२ माघ कृष्णा ५ एवं परमेष्ठिप्रकाशसारकी संवत् १५५३ श्रावण सुदी ५ के दिन समाप्त की थी तो योगशास्त्रकी रचना इससे पूर्व कैसे समाप्त हो सकती है, क्योंकि प्रशस्तिमें दोनों रचनाओंका नामोल्लेख मिलता है जिससे यह झलकता है कि दोनों रचनायें इस रचनासे पूर्व ही हो गयी थीं। यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है। मेरी दृष्टिसे तो यह सम्भव है कि श्रुतकीर्तिने योगशास्त्रको प्रारम्भ करनेसे पूर्व हरिवंशपुराण तथा परमेष्ठिप्रकाशसारकी रचना प्रारम्भ कर दी हो और वह योगशास्त्रके समाप्त होनेके पश्चात् समाप्त हुई हो। योगशास्त्रमें तो केवल इसी आधार पर दोनों रचनाओंका उल्लेख कर दिया गया हो; क्योंकि ये रचनायें योगशास्त्रके प्रारम्भ होने के पूर्व प्रारम्भ कर दी गई थीं। इस प्रकार अब तक प्राप्त ग्रंथ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्रुतिकीर्तिने अपने जीवनकाल में धर्मपरीक्षा, हरिवंशपुराण, परमेष्ठिप्रकाशसार तथा योगशास्त्र इन चारों ग्रन्थोंकी रचना की थी *।

क्रमशः

---

१ योगसारके साठसे आगेके वे सब कडवक, जो ऐतिहासिक बातोंसे सम्बन्धित हैं उन्हें शीघ्र प्रकट होना चाहिए।

सम्पादक—

*श्री दि० जैन अ० क्षेत्र श्रीमहावीरजीके अनुसन्धान विभागकी ओर से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# हिन्दी-जैन-साहित्यकी विशेषता

[ श्रीकुमारी किरणवाला जैन ]

साहित्य मानव जातिके स्थूल और सूक्ष्म विचारों और अनुभवोंका सुरम्य शाब्दिक रूप है। वह जीवित और चिर उपयोगी है। वह मानव-जातिके आत्म-विकास-में सहायक है।

यद्यपि साहित्यमें कोई साम्प्रदायिक सीमायें नहीं हैं तथापि विभिन्न जातियाँ और साम्प्रदायोंने साहित्यका जो रूप अपनाया है उसीके आधार पर साहित्योंको जैन, बौद्ध अथवा वैष्णव साहित्यके नामसे पुकारा गया है। प्रत्येक साहित्यकी कुछ अपनी विशेषतायें हैं और जैन-साहित्यकी भी अपनी विशेषता है।

जैन-साहित्य व्यक्तिको स्वयं उसके भाग्यका निर्णय करनेमें सहायक है। उसका सन्देश स्वतन्त्र रहनेका है परमुखापेक्षी और परावलम्बी बननेका नहीं है। जैन-साहित्यके अनुसार प्राणी कार्य करने और उसका फल भोगनेमें भी स्वतन्त्र है। जैनधर्मका मुख्य सिद्धान्त है—स्वयं जिओ और दूसरोंको जीने दो।

प्रारम्भमें जैन-साहित्यमें धार्मिक प्रवृत्तिकी प्रधानता थी। परन्तु समयके परिवर्तनसे उसने न केवल धार्मिक विभागमें ही उन्नति की वरन अन्य विभागोंमें भी आश्चर्य-जनक उन्नति की। न्याय और अध्यात्मविद्याके विभागमें इस साहित्यने बड़े ही ऊँचे विकास-क्रमको धारण किया। विक्रमकी प्रथम शताब्दीके प्रकाण्ड विद्वान आचार्य कुन्द-कुन्द जो अध्यात्मशास्त्रके महाविद्वान् थे और द्वितीय शताब्दीके दर्शनाचार्य भारतीय गगन मण्डलके यशस्वी चन्द्र आचार्य समन्तभद्रने अनेक दार्शनिक स्तुति-ग्रन्थोंकी रचना की, जो रचनाएँ संस्कृत साहित्यमें बेजोड़ और दार्श-निक साहित्यमें अमूल्य रत्नके रूपमें ख्यातिको प्राप्त हुईं। इसके बाद अनुक्रमसे अनेक आचार्य महान ग्रन्थकारके रूपमें प्रसिद्धिको प्राप्त होते गए अनेक सूत्रकार, वादी और अध्यात्म विद्याके मर्मज्ञ विद्वानोंने भारतमें जन्म लिया, ईसाकी छठी और विक्रमकी ७ वीं शताब्दीके अकलंकदेव जैसे नैयायिक इस भारत भूमि पर अधिक नहीं हुये। अकलंकदेव बौद्ध विद्वान धर्मकीर्तिके समान ही प्रतिभा सम्पन्न ग्रन्थकार और टीकाकार थे। इन्होंने केवल जैन साहित्यमें ही नहीं, परन्तु भारतीय साहित्यमें न्याय ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखी और प्रमाण संग्रह-सिद्धिविनिश्चय, न्यायविनिश्चयविवरण और लघीयस्त्रय जैसे कर्कश तर्क ग्रन्थोंको उनके स्वोपज्ञ भाष्योंके साथ बनाया। जो आज भी उनकी प्रकाण्ड प्रतिभाके संद्योतक हैं। मध्ययुगमें न्याय शास्त्र पर विशेष रूपसे कार्य किया गया है, जो 'मध्यकालीन न्यायदर्शनके नामसे प्रसिद्ध है। यह केवल जैन और बौद्ध नैयायिकों' का ही कर्तव्य था।

द्रवेड़ियन और कर्नाटक भाषामें ही जैन साहित्य पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध होता है। कर्नाटक भाषाके 'चामुण्डराय' पुराण नामक गद्य ग्रन्थके लेखक वीर चामुण्डराय जैन ही थे जो राचमल्ल तृतीयके मन्त्री और प्रधान सेनापति थे। आदिपंप, कवि चक्रवर्ती रन्न, अभिनव पंप आदि उच्च कोटिके जैनाचार्य होगये हैं। कनाड़ी भाषा-का जैन साहित्य प्रायः सभी विषयों पर लिखा गया है। इसी तरह तामिल और तेलगू भाषामें जैनाचार्योंने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। तामिल भाषाके जन्मदाता जैन ही कहे जाते हैं।

जैन-साहित्यमें ऐतिहासिक पुरुषोंके चरित्र वर्णनकी भी विशेष पद्धति रही है। 'रिट्ठणेमिचरिउ' 'पउमचरिय' आदि ग्रन्थोंके नाम उल्लेखनीय हैं। 'रिट्ठणेमिचरिउ' में कौरव पांडवोंका वर्णन है और पउमचरियमें श्री-रामचन्द्र-जीका वर्णन है। इस प्रकार यह दोनों ग्रन्थ क्रमशः 'जैन महाभारत' और 'जैन रामायण' कहे जा सकते हैं। चरित्र-ग्रन्थोंमें जटासिंहनन्दि वरचित 'वरांग चरित्र' एक सुन्दर काव्य ग्रन्थ है। 'वसुदेवहिण्डी' भी प्राकृत भाषाका एक सुन्दर पुराण है। वादीभसिंह प्रणीत 'क्षत्रचूड़ामणि' नामका ग्रन्थ भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। लेखकने इसमें जिस पात्रका वर्णन किया है वह महावीर कालीन है। अनुष्टुप छन्दोंमें अर्ध भागमें चरित्र और शेष अर्ध भागमें विशद नीतिका वर्णन है।

व्याकरण-साहित्यमें देवनन्दि कृत 'जैनेन्द्र व्याकरण' 'सिद्ध हेमशब्दानुशासन' अत्यन्त उच्च कोटिके ग्रन्थ हैं। पाणिनीयकी 'अष्टाध्यायी' में जिस प्रकार सात अध्याय संस्कृत भाषाके और एक अध्याय वैदिक प्रक्रियाका है उसी प्रकार हेमचन्द्राचार्यजी ने सात अध्याय संस्कृत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाषामें और एक प्राकृत भाषामें रचा था। जैनेन्द्र महावृत्ति 'जेनेन्द्र प्रक्रिया', 'कातन्त्र रूपमाला' और 'शाकटायन व्याकरण' आदि सुन्दर व्याकरण ग्रन्थ है। शाकटायन व्याकरण पाणिनीसे पूर्वका है। पाणिनीने अपने व्याकरणमें शकटायनके सूत्रका स्वयं उल्लेख किया है।

अलंकारमें 'अलंकार चिन्तामणि' और वागभट्ट कृत 'वागभट्टालंकार' है। कोषोंमें 'अभिधान चिन्तामणि', 'अनेकार्थ संग्रह', 'नाममाला', 'निघंटुशेष', 'अभिधान राजेन्द्र', 'पाइयसद्दमहण्णव' तथा 'विश्वलोचन-कोष' आदि अनुपम ग्रन्थ है। पाद-पूर्ति काव्योंकी रचना भी जैन-साहित्यकी प्रमुख विशेषता है।

जैन-साहित्यमें स्तोत्रोंकी भी रचना की गई। महाकवि धनंजय विरचित 'विषापहारस्तोत्र और कुमुदचद्रंप्रणीत' कल्याणमन्दिरस्तोत्र आदि ग्रन्थ साहित्यकी दृष्टिसे उच्च कोटिके हैं।

जैन-साहित्यमें चम्पू काव्योंकी भी प्रधानता रही। यह जैन-साहित्यकी एक प्रमुख विशेषता है। जैनाचार्योंने इस क्षेत्रमें प्रशंसनीय कार्य किया है। सोमदेवकृत 'यशस्तिलकचम्पू', 'हरिचन्द विरचित', 'जीवधंरचम्पू' 'अर्हद्दास प्रणीत' 'पुरुदेवचम्पू' आदि ग्रन्थ संस्कृत भाषाके सुन्दर ग्रन्थ हैं।

सैद्धान्तिक तथा नीतिविषयक ग्रन्थोंमें निम्नांकित ग्रन्थोंकी प्रधानता रही—

षट्खण्डागम, कषायपाहुड, 'तत्वार्थसूत्र', 'सर्वार्थसिद्धि', 'राजवार्तिक', 'गोम्मटसार', 'प्रवचनसार' 'पंचास्तिकाय', आदि सैद्धान्तिक ग्रन्थ हैं, तथा अमितगति कृत 'सुभाषित रत्नदोह', पद्मनन्दिआचार्य कृत 'पद्मनन्दि पंचविंशतिका' और महाराज अमोघवर्षकृत 'प्रश्नोत्तर रत्नमाला' आदि नीतिविषयक ग्रन्थ है।

पद्य ग्रन्थोंके साथ साथ जैन साहित्यमें गद्य ग्रन्थोंकी भी प्रधानता रही। वादीभसिंहकृत 'गद्यचिंतामणि' और धनपालकृत 'तिलकमंजरी' जैसे उच्च कोटिके गद्य ग्रन्थ संस्कृत भाषामें रचे गये।

नाटकों में 'मदनपराजय', 'ज्ञानसूर्योदय' विक्रान्तकौरव, मैथली कल्याण. अंजनापवनंजय. नलोवलास, राघवाभ्युदय, निर्भयव्यायोग, और हरिमर्दन आदि उल्लेख योग्य हैं।

लाक्षणिक-ग्रंथोंमें हेमचन्द्राचार्यकृत 'काव्यानुशासन' उल्लेखनीय है। कथा साहित्यमें आचार्य हरिषेणविरचित 'कथाकोष' अत्यन्त प्राचीन है। 'आराधनाकथाकोष' 'पुण्याश्रव कथाकोष' उद्योतन सूरि विरचित 'कुवलयमाला' हरिभद्र कृत, समराइच्च कहा, और पादलिप्तसूरिकृत 'तरंगवती कहा' आदि सुन्दर कथा ग्रन्थ हैं। कुवलयमाला, प्राकृत भाषाका उच्च कोटिका ग्रन्थ है। प्रस्तुत ग्रन्थका जैन-साहित्य में वही स्थान है, जो स्थान भारतीय साहित्यमें 'उपमितिभवप्रपंच कथा' का है।

प्रबन्धोंमें चन्द्रप्रभसूरिकृत प्रभावकचरित, मेरुतुंगकृत, प्रबन्ध चिन्तामणी, राजशेखकृत, प्रबन्धकोष, तथा जिनप्रभ सूरिकृत विविधतीर्थकल्प, दृष्टव्य हैं।

विशेषत: जैन-साहित्य दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—लौकिक और धार्मिक साहित्य। लौकिकसे तात्पर्य उस साहित्यसे है जिसमें साम्प्रदायिकताके बन्धनोंसे स्वतंत्र होकर ग्रन्थ रचना की जाती है। धार्मिक साहित्य वह है जिसमें इस लोकके अतिरिक्त परलोककी ओर भी संकेत रहता है।

जैन साहित्यमें ऐसे अनेक ग्रन्थ हैं जिन्हें देखकर सरलतापूर्वक कोई जैनाचार्योंकी कृति नहीं कह सकता है। सोमदेव-कृत 'नीतिवाक्यामृत' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। यह एक 'नीतिविषयक ग्रन्थ' है। इसमें एक अध्याय अर्थशास्त्रका भी है। दूसरा ग्रन्थ है 'दोहापाहुड'। यह रहस्यवादका एक सुन्दर अपभ्रंशभाषाका ग्रन्थ है।

गणित ज्योतिषमें भी जैन साहित्य पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध होता है। उसमें जैनाचार्योंने अनेक अनोखे नियमों द्वारा ज्योतिष विभागको सम्पन्न किया है। इसके लिये 'तिलोयपण्णत्ती', 'त्रिलोकसार', 'जंबूदीव पण्णत्ती', 'सूर्यपण्णत्ती', आदि उच्च कोटके ग्रंथ हैं। महावीराचार्य द्वारा रचित 'गणितसारसंग्रह' भी अपने समयकी एक अपूर्व कृति है। यह एक अद्वितीय ग्रन्थ है। गणित विषय की १-२ उपयोगिता पर दृष्टि डालते हुए

१ जैन गणित साहित्य पर प्रोफेसर दत्तमहाशयके विचार निम्नलिखित हैं।

"What is more important for the general history of mathematics certain methods of finding solutions of raitional triangles, the credit for the discovery

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री महावीराचायने अपने 'गणितसार' संग्रहमें बतलाया है कि—

'लौकिके वैदिके आपि तथा सामायिकेऽपि यः।
व्यापारस्तत्र सर्वत्र संख्यानमुपजायते ॥
कामतन्त्रेऽर्थशास्त्रे च गांधर्वे नाटकेऽपि वा।
सूपशास्त्रे तथा वैद्ये वास्तुविद्यादिवस्तुषु ॥
सूर्यादिग्रहचारेषु ग्रहणे ग्रहसंयुते।
त्रिप्रश्ने चन्द्रवृत्तौ च सर्वत्रांगीकृतं हि तत् (?) ॥
बहुभिर्विप्रलापैः किं त्रैलोक्ये सचराचरे।
यत्किञ्चिद्वस्तु तत्सर्वं गणितेन विना नहि ॥

इससे स्पष्ट है कि गणितका व्यवहारिक रूप प्रायः समस्त भारतीय वाङ्मयमें व्याप्त है। ऐसा कोई भी शास्त्र नहीं जिसकी उपयोगिता गणित, राशि-गणित, कलासवर्णगणित, जाव-ताव गणित, वर्ग घन, वर्ग-वर्ग और कल्प इन दस भेदों द्वारा समस्त व्यवहारिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये जैनाचार्योंने प्रयत्न किया है। जैन गणितमें नदीका विस्तार, पहाड़की ऊँचाई, त्रिकोण, चौकोन क्षेत्रोंके परिमाण इत्यादि अनेक व्यवहारिक बातोंका गणित और त्रिकोण मितिके सिद्धान्तों द्वारा पता चलता है। इस प्रकार समस्त जैन ज्योतिष व्यवहारिकतासे परिपूर्ण है[1]।

जैनाचार्योंने फलित ज्योतिष ग्रन्थकी भी रचना की। 'रिष्टसमुच्चय', 'केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि' ज्योतिषशास्त्रके अपूर्व ग्रन्थ है। जैन ज्योतिषकी व्यवहारिकता वर्णित करते हुये श्रीनेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्यजी कहते हैं कि 'इतिहास एवं विकासक्रमकी दृष्टिसे जैनज्योतिषका जितना महत्व है उससे कहीं अधिक महत्व व्यवहारिक दृष्टिसे भी है। जैन ज्योतिषके रचियता आचार्योंने भारतीय ज्योतिषकी अनेक समस्याओंको बड़ी ही सरलतासे सुलझाया है[2]।

प्राकृत भाषा अपने सम्पूर्ण मधुमय सौंदर्यको लिये हुये जैन-साहित्यमें प्रयुक्त हुई। यदि कहा जाय कि प्राकृतका मागधीरूप और उसके पश्चात् अपभ्रंश प्रारम्भसे ही जैनाचार्योंकी भाषा रही तो अत्युक्ति न होगी।

जैन कवियोंने केवल एक ही भाषाका आश्रय न लेकर विभिन्न भाषाओंमें भी साहित्य रचनायें की। तामिल भाषाका 'कुरल-काव्य' और 'नालदियर' जैन-साहित्यके दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इनमें साम्प्रदायिकताका तनिकभी अंश नहीं है। इस ग्रंथको देखकर कोई इसे जैन कविकी कृति नहीं कह सकता। तामिल भाषाके उच्च कोटिके तीन महाकाव्य जैनाचार्यों द्वारा ही रचे गये—'चिन्तामणि' 'सिलप्पडिकारम्' और 'वलैतापति'।

कन्नड साहित्य भी जैनाचार्यों द्वारा रचित उपलब्ध होता है। १३ वीं शताब्दी तक कन्नड़ भाषामें जितना साहित्य उपलब्ध होता है वह अधिकांश मात्रामें जैनाचार्यों द्वारा रचित ही है 'पंप भारत' और 'शब्दमणिदर्पण' आदि उच्च कोटिके ग्रंथ है[3]।

---

of which should very rightly go to Mahavir are attributed by modern historians, by mistake to writers posteriors to him".

Bullition Cal. Math. Sec. XX1 P. 116.

२ इसी प्रकार डाक्टर हीरालाल कापड़ियाने भारतीय गणितशास्त्र पर विचार करते हुए 'गणिततिलक' की भूमिका में लिखा है—

"In this connection it may be added that the Indians in general and the Jains in particular have not been behind any nation in paying due attention to This subject. This is berne out by Ganita Sara Sangrah V.1.15) of Mahavi racharya (850 A.D.) of the Southern School of Mathematics. There in the points out the use-fulness of Mathematics or 'the Science of Cal-culation' regarding the study of various subjects like music, logic, drama, medicine, archi-tecture, cookery, prosody, Grammar, poetics, economics, erotics etc.".

प्रेमी अभिनन्दन ग्रंथ पृ० १७३.

१ श्रीमहावीरस्मृति ग्रन्थ पृ० २०२
२ श्रीमहावीरस्मृति ग्रन्थ पृ० १८६
३ तामिल और कन्नड़ साहित्यकी विशेषता प्रकट करते हुये श्री रमास्वामी आयंगर कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'कर्नाटक कविचरित' के मूल लेखक आर० नरसिंहाचार्य जैन कवियोंके सम्बन्धमें अपने उद्गार प्रकट करते हुए कहते हैं—'जैनी ही कन्नड भाषाके आदि कवि हैं। आज तक उपलब्ध सभी प्राचीन और उत्तम कृतियां जैन कवियोंकी ही हैं। प्राचीन जैन कवि ही कन्नड-भाषाके सौन्दर्य एवं कान्तिके विशेषतया कारण हैं। पंप, रन्न, और पोन्नको महा कवियोंमें गणना करना उचित ही है। अन्य कवियोंने भी १४वीं शताब्दीके अन्त तक सर्वश्लाघ्य चंपू काव्योंकी रचना की है। कन्नड भाषाके सहायक छंद, अलंकार, व्याकरण, कोष आदि ग्रन्थ अधिकतया जैनियोंके द्वारा ही रचित हैं।[1]

निबन्धके पूर्व संस्कृत, प्राकृत तथा अन्य जैन-साहित्यका इतना परिचय देनेकी आवश्यकता केवल इसीलिये पड़ी कि जैनाचार्यों और लेखकोंकी यह दृढतर भावना रही है कि प्राचीन आचार्योंके सिद्धांतोंसे बिल्कुल विचलित न हुआ जाय। जैनाचार्य और जैन लेखक परम्परागत सिद्धांतोंको पूर्ण प्रामाणिक और समादरकी दृष्टिसे देखते आये हैं। यही कारण है कि जैन-साहित्यकी धारा छोटी भले ही पड़ गई हो लेकिन अभी तक अपेक्षाकृत निर्दोष पाई जाती है। निर्दिष्ट समयके हमारे हिन्दी जैन लेखक तथा कवियोंने भी उक्त धारणाको पूर्णरूपसे अपनाया है और कुछ भी लिखते समय उन्होंने इस बातका पूरा ध्यान रखा है कि परम्परागत सिद्धांतोंका कहीं विरोध न हो जाय। लिखा सबने उन सिद्धांतोंको अपनी भाषा शैलीमें ही है। उनकी भाषामें उक्ति वैचित्र्य भले ही हो बात करनेका ढंग निराला भले ही हो लेकिन सिद्धांत वही रहेगा।

हिन्दी जैन-साहित्यमें आत्मचरित्रकी रचनाकी गई जो इसकी सर्वप्रमुख विशेषता है। आजसे लगभग ३०० वर्ष पूर्व जब कि आत्मचरित्र लिखनेकी परिपाटी प्रचलित नहीं थी ऐसे समयमें ६७५ दोहे और चौपाइयोंमें कविवर बनारसीदासजीने अपने ५५ वर्षका आत्म-चरित्र लिखा। इसमें वह संजीवनी शक्ति विद्यमान हैं जो इसको सदैव जीवित रख सकती है। यह अपने समयकी अनेक ऐतहासिक घटनाओंसे ओत-प्रोत है। मुसलमानी राज्यके कठोर व्यवहारोंका इसमें यथातथ्य चित्रण है। सत्यप्रियता और स्पष्टवादिताके इसमें सुन्दर दृष्टान्त मिलते हैं।

हिन्दी जैन साहित्यमें पंचतंत्राख्यानटीका और सिंघासन बत्तीसी आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। नाटक ग्रन्थोंमें कविवर बनारसीदासजीका रचा हुआ नाटक समयसार अपने समयकी एक अपूर्व रचना है। यह आध्यात्मिकतासे ओत-प्रोत एक सुन्दर कृति है। निम्नांकित दोहेमें उनकी आध्यात्मिकताका स्पष्ट परिचय मिलता है।

भेदज्ञान साबू भयो, समरस निर्मल नीर।
धोबी अन्तर आत्मा, धोवे निजगुण चीर॥

प्रस्तुत ग्रन्थ परम भट्टारक श्रीमदमृतचन्द्रायजीके संस्कृतकलशोंका पद्यानुवाद है। अनुवाद अत्यन्त सरल और सुन्दर है।

हिन्दी जैन-साहित्यमें टोडरमल, जयचन्द, दीपचन्द, टेकचन्द, दौलतराम, तथा सदासुखदास आदि उच्चकोटिके गद्य लेखक और टीकाकार हो गये हैं।

चरित्र ग्रंथोंमें 'वरांग चरित्र' 'जीवन्धरचरित्र' 'पार्श्वपुराण' और 'वर्द्धमान पुराण' आदि हैं।

छंद-शास्त्रकी उन्नतिमें भी हिन्दी जैन-साहित्यके कवियोंने विशेष सहयोग प्रदान किया। कविवर वृन्दावनदास कृत 'छंद शास्त्र' पिंगलकी एक सुन्दर रचना है।

---

"The Jain contribution to Tamil literature form the most precious possessions of the Tamilians. The largest portion of Sanskrit deraiviations found in the Tamil language was introduced by the Jains they aftered the Sanskirt, which they berrowed in order to bring it in accordance with Tamil euphonic rules. The Kanarese literature also owes a great deap to the Jains. Infact they were the originators of it."

अर्थात् तामिल साहित्य, जो कि जैन विद्वानोंकी देन है। तामिल भाषाओंके लिये अत्यन्त मूल्यवान है तामिल-भाषाके जो बहुतसे शब्द पाये जाते हैं। यह कार्य जैनियों द्वारा सम्पन्न किया गया था उनके द्वारा ग्रहण किए गए संस्कृत भाषाके शब्दोंमें ऐसा परिवर्तन किया गया है कि वे तामिल भाषाकी ध्वनिके अनुरूप हो जावें।

—जैन शासन—३५-६-३६०

१ पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री कृत जैनधर्म पृ० २६१-२६३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दी जैन-साहित्यमें शुभाषित ग्रन्थोंका भी परिचय मिलता है। कविवर भूधरदास विरचित जैनशतक, बुधजन कृत, बुधजन सतसई और छत्रपति विरचित, मदनमोहन-पंचशती आदि महत्वपूर्ण काव्य-ग्रन्थ है।

जैन साहित्यकी महत्ता वर्णित करते हुए श्री पूरनचंद नाहर और श्रीकृष्णचन्द्र घोष अपनी कृति 'On Epitome of Jainism' में इस प्रकार लिखते हैं।

"It is beyond doubt that the Jain writers hold a prominent position in the literary activity of the country. Besides the Jain Sidhanta and its commentaries there are a great number of other works both in prakrit and Sanskrit, on philosophy, Logic, Astronomy, Grammar, Rhetone, Lives of Saints etc. Both in prose and poetry ................................Inshort the Jain literature c mprising as it does all the branches of ancient Indin literature holds no unsignificant a niche in the gallary of that literature, and as it truly said by Prof. Her to. 'With respect to its narrative part, it holds a prominent position not only in the Indian literature but in the literature of mankind."

—Pp. 694-95.

# हमारी तीर्थयात्राके संस्मरण

( गत किरण तीनसे आगे )

केशरियाजीसे सबेरे दश बजे चलकर हम लोग ४ बजेके करीब डूंगरपुर आये। इस नगरका पुरातन नाम 'गिरिपुर' ग्रन्थोंमें उल्लिखित मिलता हैं। उस समय गिरिपुर दिगम्बर समाजके विद्वानोंकी ग्रंथ रचना स्थान रहा है जिसके दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। यद्यपि इनके अतिरिक्त तलाश करने पर अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। माथुरसंघीय भट्टारक उदयचन्द्रके प्रशिष्य और भ० बालचन्द्रके शिष्य विनयचन्द्रने, जिनका समय विक्रम की १५ वीं शताब्दी है, अपना अपभ्रंश भाषाका 'चूनड़ी' नामका ग्रन्थ जो ३३ पद्योंकी संख्याके लिये हुए हैं, गिरिपुरके अजय नरेशके राजविहारमें बैठकर बनाया है। ×

विक्रमकी १६ वीं और १७ वीं शताब्दीके पूर्वाधके विद्वान भट्टारक शुभचन्द्रने अपना 'चन्दनाचरित्र' वाग्वर देशके 'गिरिपुर' नामके नगरमें बनाकर समाप्त किया है जैसा कि 'चन्दना चरित्र' के निम्न पद्यसे स्पष्ट है:—

वाग्वरे वाग्वरे देशे वाग्वरैर्विदिते क्षितौ।
चन्दनाचरितं चक्रे शुभचन्द्रो गिरौपुरे ॥२००

इन समुल्लेखोंसे गिरिपुरकी महत्ताका स्पष्ट आभास मिलता है। परन्तु इस गिरिपुर नगरका 'डूंगरपुर' नाम कब पड़ा, यह कुछ ज्ञात नहीं होता, संभव है किसी 'डूंगर' नामके व्यक्तिके कारण इस नगरका नाम डूंगरपुर लोकमें विश्रुतिको प्राप्त हुआ हो अथवा 'डूंगर या डूंगर' शब्द पर्वतके अर्थमें प्रयुक्त होता है। अत: सम्भव है कि पहाड़ी प्रदेश होनेके कारण उसका नाम डूंगरपुर पड़ा हो। डूंगरपुर राज्यका प्राचीन नाम वागड़' है, जो गुजराती भाषाके 'वगड़ा' शब्दसे बहुत कुछ सादृश्य रखता है आज कल लोगभी इसे 'वागड़िया' कह देते हैं। 'वागड़' शब्दका संस्कृत रूपान्तर भी वाग्वर, वागट और वैयागड़ अनेक लिखालेखों. प्रशस्तियों और मूर्तिलेखोंमें अंकित मिलता है❀। इससे स्पष्ट है कि डूंगरपुरका सम्बन्ध वागडसे रहा है वागड देशमें डूंगरपुर, वांसवाडा और उदयपुरके कुछ दक्षिणी भागका समावेश किया जाता था अर्थात् वागढ

× विहुयणि गिरिपुरु जगि विक्खायउ
सग्ग खण्ड णं धरियलि आयउ
तहिं णिवसंतें मुणिवरेण
अजय णरिंदहो राय-विहारहिं।

❀ देखो, डूंगरपुरका इतिहास पृ० २

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देशमें छप्पन देशोंका समावेश निहित था। किन्तु जबसे उसे पूर्वी और पश्चिमी दो विभागोंमें विभाजित कर डूंगड़पुर राज्य और वांसवाडा राज्यकी अलग अलग स्थापनाकी गई। उसी समयसे डूंगरपुर राज्य भी बागड़ कहा जाने लगा है।

डूंगरपुर राज्यमें जैनियोंकी अच्छी संख्या पाई जाती है जो दिगम्बर और श्वेताम्बर दो भागोंमें विभाजित है, उनमें डूंगरपुर स्टेटमें दिगम्बर सम्प्रदायके जैनियोंकी संख्या अधिक है जो दशा हूमड़, वीसाहूमड़, नरसिंहपुरा वीसा, तथा नागदावीसा आदि उपजातियोंमें विभाजित हैं। इन जातियोंके लोग राजपूताना, बागड़ प्रान्त और गुजरात प्रान्तमें ही पाये जाते हैं। यह हूमड़ जाति किसी समय बड़ी समृद्ध और वैभवशाली रही है, यह जैन धर्मके श्रद्धालु रहे हैं, इनका राज्यकार्यके संचालनमें भी हाथ रहा है। खास डूंगरपुरमें दिगम्बर जैनियोंकी संख्या सौ घरसे ऊपर है। एक भट्टारकीय गद्दी भी है और उस गद्दी पर वर्तमान भट्टारक भी मौजूद हैं, पर वे विद्वान नहीं है किन्तु साधारण पढ़े लिखे है। परन्तु मुझे इस समय उनका नाम विस्मरण हो गया है। डूंगरपुरमें ४ शिखरवन्द मन्दिर हैं मन्दिरोंमें मूर्तियोंका संग्रह अधिक है। भट्टारकीय मन्दिरमें अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ मौजूद हैं। जिनमें कई ताड़पत्रों पर भी अंकित हैं। डूंगरपुरके आस-पासके गांवोंमें भी अनेक जैन मन्दिर हैं, जहां पहले उनमें दिगम्बर जनियोंकी आबादी थी किन्तु खेद है कि अब वहाँ एक भी घर जनियोंका नहीं है, केवल मन्दिर ही अवस्थित है।

सागवाडा भी डूंगरपुरराज्यमें स्थित है। विक्रमकी १५वीं, १६वीं और १७वीं शताब्दीमें जैनधर्मका महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सागवाडेकी भट्टारकीय गद्दी भी प्रसिद्ध रही है। इस गद्दी पर अनेक भट्टारक हो चुके हैं जिनमें कई भट्टारक बड़े भारी विद्वान और ग्रन्थकार हुए हैं।

डूंगरपुरसे थोड़ी दूर ५-६ मील चलकर एक छोटी नदी पारकर हम लोग 'शालाथाना' पहुँचे। यह एक छोटा सा गांव है और डूंगरपुरमें ही शामिल है। यहां सेठ छदामीलालजीकी कारकी टंकीमें छिद्र हो जानेके कारण रात भर ठहरना पड़ा। शालाथानामें एक दिगम्बर जैन मन्दिर है, मन्दिरमें एक शिलालेख भी अंकित है। इस गाँवमें ५-६ घर जैनियोंके हैं जिनकी आर्थिक स्थिति साधारण है, रहन सहन भी उच्च नहीं है। शाह कचरूलाल एक साधर्मी सज्जन हैं, जो प्रकृतिसे भद्र जान पड़ते हैं। उन्होंने ही रात्रिमें हम लोगोंके ठहरनेकी व्यवस्था कराई।

यहां एक जैन मन्दिर अधबना पड़ा है—कहा जाता है कि कई दि० जैन सेठ इस मन्दिरका निर्माण करा रहा था। परन्तु कारणवश किसी नवाबने उसे गोलीसे मरवा दिया जिससे यह मंदिर उस समयसे अधूरा ही पड़ा है।

शालाथानासे ४ बजे सबेरे चलकर हम लोग रतनपुर होते हुए 'सांवला' जी पहुँचे। रास्ता बीहड़ और भयानक है बड़ी सावधानी से जाना होता है, जरा चूके कि जीवनकी आशा निराशामें बदल जानेकी शंका रहती है। शालाथानामें डूंगरपुरके एक सैय्यद ड्राइवर ने हमारे ड्राइवरको रास्तेकी उस विषमताको बतला दिया था, साथ ही गाड़ीकी रफ्तार आदिके सम्बन्धमें भी स्पष्ट सूचना कर दी थी, इस कारण हमें रास्तेमें कोई विशेष परेशानी नहीं उठानी पड़ी। श्यामलाजीमें मन्दिर नहीं था धर्मशाला थी, अतः त्यागियोंको सामायिक कराकर संघ 'मुड़ासा' पहुँचा।

मुड़ासामें हम लोग 'पटेल' बोर्डिंग हाऊसमें ठहरे, स्नानादिसे निवृत्त होकर भोजन किया। यह नगर भी नदीके किनारे वसा हुआ है। यह किसी समय अच्छा शहर रहा है आज भी यह सम्पन्न है, और व्यापारका स्थल बनने जा रहा है। यह वही स्थान है जहां पर भट्टारक जिनचन्द्रने संवत् १५४८ में सहस्त्रों मूर्तियां शाह ज़ीवराज पापडीवाल द्वारा प्रतिष्ठित कराई थी, उस समय मुड़ासामें किसी रावलका राज्य शासन चला रहा था, जिसका नाम अब मूर्ति लेखोंमें अस्पष्ट हो जानेसे पढ़ा नहीं जाता है। खेद है कि आज वहां कोई भी दिगम्बर जैन मन्दिर नहीं है। हां श्वेताम्बर मन्दिर मौजूद है। यहां से हम लोग अहमदाबादकी ओर चले। १०-१५ मील तक तो सड़क अच्छी मिली, बादमें सड़क अत्यन्त खराब ऊबड़ खाबड़ थी, मरम्मतकी जा रही थी, रात्रिका समय होनेसे हम लोगोंको बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। फिर भी हम लोग धैर्य धारणकर कष्टोंको परवाह न करते हुए रात्रिको १२॥ बजे अहमदाबादमें सलापस रोड पर सेठ प्रेमचन्द्र मोतीचन्द्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बर जैन बोर्डिंग हाउसमें जा पहुँचे। वहाँ वेदी प्रतिष्ठा महोत्सवका कार्य सम्पन्न होनेसे स्थान खाली न था पं० सिद्धसागरजीका ५०० आदमियोंका एक संघ पहलेसे ठहरा हुआ था। फिर भी थोड़ा सा स्थान मल गया उसीमें रात बिताई। और प्रातःकाल उठकर सामयिक क्रियाओंसे निवृत्त होकर दर्शन किये। यहाँकी जनताने 'प्रीति भोज' भी दिया और मुख्तार साहबके दीर्घायु होनेकी कामना भी की। भट्टारक यशःकीर्ति और पं० रामचन्द्रजी शर्मासे भी परिचय हुआ।

सबेरे अहमदाबादसे हम लोग राजकोटके लिये रवाना हुए और वीरमगाँव पहुँच गए। वीरमगांवसे वडमानकी ओर चले, परन्तु बीचमें ही रास्ता भूल गए जिससे ला० राजकृष्णजी और सेठ छदामीलालजीसे हमारा सम्बन्ध विच्छेद हो गया, वे पीछे रह गए और हम आगे निकल आये। रास्ता पगडंडियोंके रूपमें था, पूंछने पर लोग वडमानको दो गऊ या चार गौ बतलाते थे, परन्तु कई मील चलनेके बाद भी वडमानका कहीं पता नहीं चलता था। इस कारण बड़ी परेशानी उठाई। जब ५-६ मील चलकर लोगोंसे रास्ता पूंछते तो वे ऊपर वाला ही उत्तर देते। आखिर कई मीलका चक्कर काटते हुए हम लोग १॥ बजेके करीब वडमान पहुँचे। परन्तु वहाँका पानी अत्यन्त खारी था। आखिर एक श्वेताम्बर मन्दिरमें पहुँचे, उनसे पूछा, ठहरनेकी अनुमति मिल गई, हम लोगोंने नहा धोकर दर्शन सामायिकादिसे निवृत्त होकर साथमें रखे हुए भोजनसे अपनी छुधा शान्त की। वहांके संघने मीठे पानीकी सब व्यवस्था की। वे साधर्मी सज्जन बड़े भद्र प्रकृतिके जान पड़ते थे। वहाँसे हम लोग चलकर रात्रिमें ९ बजेके करीब 'राजकोट' पहुँचे और कानजी स्वामीके उपदेशसे निर्मित नूतन मंदिरके अहातेमें स्थित कमरोंमें ठहरे।

राजकोट निवासी ब्र० मूलशंकरजीके साथमें होनेसे हम लोगोंको ठहरनेमें किसी प्रकारकी असुविधा नहीं हुई। प्रातःकाल दैनिक क्रियाओंसे निवृत्त होकर मंदिरजीमें श्री-मंधरस्वामीको भव्य मूर्तिके दर्शन किये। मूर्ति बड़ी ही मनोज्ञ और चित्ताकर्षक है, मूर्तिका अवलोकन कर हम लोग मार्गजन्य खेदको भूल गये, हृदयकमल खिल गये, उक्त मूर्तियोंके दर्शनसे अभूत पूर्व आनन्द हुआ। वास्तवमें मूर्तिमें कलाकारके मनोभावोंका मूर्तिमान चित्रण है। साथमें यह भी विचार आया कि प्रत्येक मन्दिरमें इसी प्रकारकी चित्ताकर्षक मूर्तियाँ होनी चाहिये और मन्दिर इसी तरह सादा तथा धर्मसाधनकी अन्य सुविधाओंको लिये होने चाहिये। राजकोटका यह मन्दिर दो ढाई लाख रुपया खर्च करके गुजरातके संत श्रीकानजीस्वामीके उपदेशसे अभी बनकर तैयार हुआ है। मन्दिर सादा, स्वच्छ, हवादार और धर्मसाधनके लिये उपयुक्त है, श्रीमन्धर स्वामीकी उक्त मूर्तिका चित्र भी लिया गया है। ब्रह्मचारी मूलशंकरजीके यहां हम लोगोंने भोजन किया। उस समय ब्रह्मचारीजीके कुटुम्बका परिचय पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई मूलशंकरजीने अपने हरे-भरे एवं सुख समृद्ध परिवारोंको छोड़कर आत्मकल्याणकी दृष्टिसे अपनेको व्रतोंसे अलंकृत किया। उनके दोनों लड़के पोते और पोती तथा धर्मपत्नी सभी शान्त और धर्मश्रद्धालु जान पड़े। उनके समस्त परिवारका संयुक्त चित्रभी लिया गया है।

राजकोट गुजरातका एक अच्छा शहर है, यहाँसभी प्रकार-की चीजें मिलती हैं नगर समृद्ध है, अहमदाबादकी अपेक्षा अधिक साफ-सुथरा है। यहांके जैनियों पर कानजीस्वामी-के उपदेशोंका अच्छा असर है। दुपहरके बाद हम लोग राजकोटसे रवाना होकर गोधरा होते हुए जूनागढ़-पहुँचे और वहांसे गिरनारजीकी तलहटीमें स्थित धर्मशालामें गए। वहां देखा तो दिगम्बर धर्मशाला यात्रियोंसे ठसाठस भरी हुई थी। उसमें स्थान न मिलने पर हम लोग श्वेता-म्बर धर्मशाल में ठहरे। प्रातःकाल ३ बजेके करीब दैनिक कृत्योंसे निपटकर हम लोग यात्राको गए और हम लोगोंने पहाड़ पर चढ़कर सानन्द यात्राएँ की। यात्रामें बड़ा ही आनन्द आया। मार्गजन्य कष्टका किंचित् भी अनुभव नहीं हुआ। गिरिनगर या गिरिनारका प्राचीन नाम 'उज्जयंत' 'ऊर्जयन्त' गिरि है। रैवतकगिरि और गिरि-नगर नामोंका कब प्रचलन हुआ इसका ठीक निर्देश अभी तक नहीं मिला, किन्तु इतना स्पष्ट है कि विक्रमकी ९ वीं शताब्दीके आचार्य वीरसेनने अपनी धवला टीकामें 'सोरट्ठ-विषय-गिरिणयर-पट्टण-चंदगुहा-ठिएण' वाक्यके द्वारा सौराष्ट्र देशमें स्थित गिरिनगर का उल्लेख किया है जिससे स्पष्ट ध्वनित होता है कि उस समय तथा उससे पूर्व 'गिरिनगर' शब्दका प्रचार हो चुका था।

गिरिनगर सौराष्ट्रदेशकी वह पवित्र भूमि है जिस पर जैनियोंके २२ वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथने तपश्चर्या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा कर्मशत्रुओंको विनष्ट कर केवलज्ञान द्वारा जगतके जीवोंको संसारके दुःखोंसे छूटनेका सरल उपाय बतलाया था, साथ ही लोकमें दयाकी वह मन्दाकिनी बहाई जिससे अनन्त जीवोंका उद्धार हुआ था, मांसभक्षणकी लोलुपताके लिये बंदी किये गये उन पशुओंको रिहाई मिली थी जो भगवान नेमिनाथके विवाहमें सम्मिलित यदुवंशी राजाओंकी क्षुधापूर्तिके लिये एक बाडेमें इकट्ठे किये गये थे। इस पर्वत पर सहस्त्रों व्यक्तियोंने तृष्णाके अपरिमित तारोंको तोड़कर और देहसे भी नेह छोड़कर आत्मसाधना कर परमात्मपद प्राप्त किया था। अतएव यह निर्वाण भूमि अत्यन्त पवित्र है। यहांके भूमण्डलके कण कणमें साधना की वह पवित्र भावना तपश्चर्याकी महत्ता, तथा स्वपर-दयाका उत्कर्ष सर्वत्र व्याप्त है। भगवान नेमिनाथकी जयके नारे असमर्थ वृद्धाओं एवं अन्य दुर्बल व्यक्तियोंके जीवनमें भी उत्साह और धैर्यकी लहर उत्पन्न कर देते हैं।

नेमिनाथ भगवानके गणधर वरदत्तकी और अगणित मुनियोंकी यह निर्वाणभूमि रहा है। अतः इसकी महत्ताका कथन हम जैसे अल्पज्ञोंसे नहीं हो सकता।

इसी सौराष्ट्र देशके उक्त गिरिनगरकी 'चन्द्रगुफा'* में आजसे दो हजार वर्ष पहले अष्टांग महानिमित्त ज्ञानी प्रवचन वत्सल, महातपस्वी क्षीणकाययोगी अंगपूर्वके एकदेशपाठी धरसेनाचार्यने दक्षिण देशवासी महिमा नगरीके उत्सवसे आगत पुष्पदन्त भूतबलिनामक साधुओंको सिद्धांत ग्रन्थ पढ़ाया था।

इसके सिवाय, विक्रमकी द्वितीय शताब्दीके आचार्य समन्तभद्र स्वामीके स्वयम्भू स्तोत्रके अनुसार उस समय यह पहाड़ भक्तिसे उल्लसितचित्त ऋषियों द्वारा निरन्तर अभिसेवित था और पहाड़की शिखरें विद्याधरोंकी स्त्रियोंसे समलंकृत थीं। इससे स्पष्ट है कि आजसे १८०० वर्ष पूर्व यह पावन तीर्थभूमि जैन साधुओंके द्वारा अभिवंदनीय तथा तपश्चरण भूमि बनी हुई थी। उसके बाद अब तकतक यह भूमि बराबर तीर्थभूमिके रूपमें जगतमें मानी एवं पूजी जाती रही है। अनेक साधु, श्रावक, श्राविकाओं और विद्वानोंके द्वारा समर्च्यनीय है। इसी कारण जैन समाजमें इस क्षेत्रकी निर्वाणक्षेत्रोंमें गणनाकी गई है।

*गिरिनगरकी यह गुफा आजकल 'बाबा प्यारा के मठ' के पास वाली जान पड़ती है।

इस क्षेत्रकी यात्रासे सातिशय पुण्यका संचय होता है। प्राचीनकालमें अनेक तीर्थ यात्रा संघ इस पर्वत पर अपूर्व उत्साहके साथ आते और पूजा वंदनाकर लौट जाते थे। आज यह केवल जैनियोंका ही तीर्थ नहीं रहा है किन्तु हिन्दुओं और मुसलमानोंका भी तीर्थ बना हुआ है। हिन्दु लोग पांचवी टोंक पर नेमिनाथके चरणोंको दत्तात्रयके चरण बतलाकर पूजते हैं और दूसरी तीसरी टोंक पर उन्होंने अपने तीर्थस्थानकी भी कल्पना की हुई है। अतः हिन्दू समाज भी इस क्षेत्रका समादर करता है। मुसलमान भी मदारसा नामक पीरकी कब्र बतलाकर इबादत करने आते हैं।

जैनियोंके मन्दिर प्रथम टोंक पर ही पाये जाते हैं। आगेकी टोंकों पर केवल चरण-चिन्ह ही अंकित हैं। यह मन्दिर दो भागोंमें विभाजित हैं दिगम्बर और श्वेताम्बर। दिगम्बर मन्दिरोंकी संख्या सिर्फ तीन है और श्वेताम्बरोंके मंदिरोंकी संख्या २२ है। मुझे तो ऐसा लगता है कि प्राचीन कालमें इस क्षेत्रपर दिगम्बर श्वेताम्बरका कोई भेद नहीं था, सभी यात्री समान भावसे आते और यात्रा करके चले जाते थे। परन्तु १०वीं ११वीं सदीके बादसे साम्प्रदायिक व्यामोहकी मात्रा अधिक बढ़ी तभीसे उक्त कल्पना रूढ़ हुई है। इसमें सन्देह नहीं कि उभय समाज के श्रीमानों और विद्वानों तथा साधु समय समय पर यात्रा संघ आते रहे हैं। आज हम वहां गिरिनगरमें विक्रमकी १२वीं १३वीं शताब्दीके बने हुए श्वेताम्बर मन्दिर देखते हैं किन्तु पुरातन दिगम्बर मन्दिरोंका कोई अवशेष देखनेमें नहीं आता। वर्तमानमें जो दिगम्बर मन्दिर विद्यमान हैं वे १७ वीं शताब्दीके जान पड़ते हैं, यद्यपि ये उसी जगह बने हुए कहे जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि गिरनगरमें दिगम्बर पुरातन मंदिर न बने हों, क्योंकि पुरातन मन्दिर और चरणवन्दनाके उल्लेख भी उपलब्ध हैं जिनसे स्पष्ट जान पड़ता है कि गिरिनगर पर दि० मन्दिर विद्यमान थे। कमसे कम १२ वीं १३ वीं शताब्दीके मन्दिर तो अवश्यही बने हुए थे। पर उनका क्या हुआ यह कुछ समझमें नहीं आता, हो सकता है कि कुछ पुरातन मन्दिर व मूर्तियां जीर्ण हो गई हों, या उपद्रवआदिके कारण विनष्ट कर दी गई हों, कुछ भी हुआ हो पर उनके अस्तित्वसे इंकार नहीं किया जा सकता। परन्तु खेद है कि सम्प्रदायके व्यामोहसे दिगम्बरोंको अपनी प्राचीन सम्पत्तिसे भी हाथ धोना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पड़ा है। यह पहाड़ पहले दिगम्बर सम्प्रदायके कब्जेमें ही था और वही इसका प्रबन्ध करते थे। इनकी अस्त व्यस्तता और असावधानीही उसमें निमित्त कारण है। इनकी प्राचीन सामग्री विद्वेशवश नष्ट-भ्रष्ट करदी गई हैं।

## गिरनारजीके तीर्थयात्रा स्थल

तलहटीसे दो मीलकी दूरी पर एक बड़ा दरवाजा आता है उससे कहीं ४० कदम पर दाहिनी ओर एक सरकारी बगला है, इसमें एक दुकानदार रहता है इसके बाजूमें दिगम्बर जैन धर्मशाला है। जिसमें एक पुजारी और एक सफाई करने वाला रहता है पासमें श्वेताम्बर धर्मशाला है। यहां से सीधी सड़क चलने पर दाहिनी ओर एक छोटा सा दरवाजा मिलता है उससे करीब १२७ सीढ़ी चढ़ने पर दाहिनी ओर एक कम्पाउन्डके अन्दर तीन दिगम्बर मान्दर हैं बाईं ओर नीचे श्वेताम्बर मंदिर हैं और इन्हीं दिगम्बर मन्दिरोंके नीचे राजुलकी गुफा है। अस्तु, मन्दिरोंसे १०५ सीढ़ी चढ़ने पर 'गोमुखीकुण्ड' मिलता है। यहां कम्पाउन्डके अन्दर नर कुण्डके ऊपर ताकमें चौबीस तीर्थंकर भगवानके चरण हैं। यह कुण्ड हिन्दू भाइयोंका है। इस कम्पाउन्डमें महादेवके मन्दिर हैं। यह सब स्थान पहली टोंक कहा जाता है। इस गोमुखीकुण्डके पाससे उत्तरकी ओर सहसाम्रवनके जानेका मार्ग भी आता है।

प्रथम टोंकसे आगे चलने पर गिरनार पर्वतकी चोटी पर बाईं ओरको अम्बादेवीका एक बड़ा मन्दिर बना हुआ है। इसके पीछे चबूतरा पर अनिरुद्ध कुमारके चरण हैं। हिन्दू भाई इसे अम्बामाताकी टोंक कहते हैं।

यहांसे आगे चलने पर एक तीसरी टोंक आती है। इस पर शम्भूकुमारके चरण हैं। हिन्दू लोग इसे गोरखनाथकी टोंक बतलाते हैं।

तीसरी टोंकसे आगे चलनेपर एक दम उतार आता है नीचे पहुँचने पर जहाँ कुछ समभाग आजाता है, वहांसे बाईं ओर चौथी टोंक पर जानेका पगडंडी मार्ग आता है। इस टोंकपर चढ़नेके लिये सीढ़ियाँ नहीं हैं, इस कारण चढ़नेमें बड़ी कठिनाई होती है, बड़ी सतर्कता एवं सावधानी से चढ़ना होता है जरा चूके कि जीवनका अन्त समझिए। इसीसे कितनेही लोग चौथी टोंककी नीचेसे वंदना करते हैं। टोंकके ऊपर काले पाषाण पर नेमिनाथकी प्रतिमा तथा दूसरी शिलापर चरण अंकित हैं, जिस पर संवत् १२४४ का एक लेखभी उत्कीर्ण किया हुआ है। पर्वतकी यह शिखर अत्यन्त ऊँची है, इस परसे चारों ओरका दृश्य बड़ाही सुन्दर प्रतीत होता है। परन्तु जब नीचेकी ओर अवलोकन करते हैं तब भयसे शरीर कांप जाता है।

उस सम भूभागसे आगे चलने पर कुछ चढ़ाई आती है उसे तय कर यात्री पांचवीं टोंक पर पहुँचता है। इस टोंक पर भगवान नेमिनाथके चरण हैं, एक पाषाणकी मूर्ति भी है जो कुछ घिस गई है। यहीं पर नेमिनाथके गणधर वरदत्तका निर्वाण हुआ है। हिन्दू भाई नेमिनाथके चरणोंको दत्तात्रयके चरण कह कर पूजते हैं और मुसलमान मदारशा पीरकी तकिया कहते हैं। इस पांचवीं टोंकसे ५-७ सीढ़ी नीचे उतरने पर संवत् ११०८ का एक लेख मिलता है जैनी यात्री इसी टोंकसे नीचे उतर कर वापिस दूसरी टोंक पर जाते हैं और वहां से वे सहसाम्रवन होते हुए तलहटीकी धर्मशालामें आ जाते हैं। हम लोग यहां पर ६ दिन ठहरे, तीन यात्राएँ कीं। एक दिन मध्यमें जूनागढ़ शहर भी देखा और मन्दिरोंके दर्शन किए, अजायब घर भी देखा।

यहांसे हम लोग पुनः राजकोट होते हुए सोनगढ़ पहुँचे।

---

**अनेकान्त समाजका लोकप्रिय ऐतिहासिक और साहित्यिक पत्र है उसका प्रत्येक साधर्मीको ग्राहक बनना और बनाना परम कर्तव्य है।**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# कुरलका महत्व और जैनकर्तृत्व

[ श्रीविद्याभूषण पं० गोविन्दराय जैन शास्त्री ]

[ इस लेखके लेखक जैन समाजके एक प्रसिद्ध प्रज्ञाचक्षु विद्वान् हैं जिन्होंने कुरल काव्यका गहरा अध्ययन ही नहीं किया बल्कि उसे संस्कृत, हिन्दी गद्य तथा हिन्दी पद्योंमें अनुवादित भी किया है, जिन सबके स्वतंत्र प्रकाशनका आयोजन हो रहा है। आप कितने परिश्रमशील लेखक और विचारक हैं यह बात पाठकोंको इस लेख परसे सहज ही जान पड़ेगा। आपने अब अनेकान्तमें लिखनेका संकल्प किया है यह बड़ी ही प्रसन्नताका विषय है और इसलिये अब आपके कितने ही महत्वके लेख पाठकोंको पढ़नेको मिलेंगे, ऐसी दृढ़ आशा है।

— सम्पादक ]

## परिचय और महत्व—

'कुरल' तामिल भाषाका एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त काव्य ग्रन्थ है। यह इतना मोहक और कलापूर्ण है कि संसार दो हजार वर्षसे इसपर मुग्ध है यूरोपकी प्रायः सब भाषाओंमें इसके अनुवाद हो चुके हैं। अंग्रेजीमें इसके रेवरेण्ड जी० यू० पोपकवि, वी० वी० एस० अय्यर और माननीय राजगोपालाचार्य-द्वारा लिखित तीन अनुवाद विद्यमान हैं।

तामिल भाषा-भाषी इसे 'तामिल वेद' 'पंचम वेद' 'ईश्वरीय ग्रन्थ' 'महान सत्य' 'सर्वदेशीय वेद' जैसे नामोंसे पुकारते हैं। इससे हम यह बात सहजमें ही जान सकते हैं कि उनकी दृष्टिमें कुरलका कितना आदर और महत्व है। 'नालदियार'* और 'कुरल' ये दोनों जैन काव्य तामिल भाषाके 'कौस्तुभ' और 'सीमन्तक' मणि हैं। तामिल भाषाका एक स्वतंत्र साहित्य है, जो मौलिकता तथा विशालतामें विश्वविख्यात् संस्कृत साहित्यसे किसी भी भांति अपनेको कम नहीं समझता।

कुरलका नामकरण ग्रन्थमें प्रयुक्त 'कुरलवेणवा' नामक छन्दविशेषके कारण हुआ है जिसका अर्थ दोहा-विशेष है। इस नीति काव्यमें १३३ अध्याय हैं, जो कि धर्म(अरम) अर्थ (पोरुल) और काम (इनवम, इन तीन विभागोंमें विभक्त हैं और ये तीनों विषय विस्तारके साथ इस प्रकार समझाये गये हैं जिससे ये मूलभूत अहिंसा-सिद्धान्तके साथ सम्बद्ध रहें। पारखी तथा धार्मिक विद्वान इसे अधिक महत्व इस कारण देते हैं कि इसकी विषय-विवेचन-शैली बड़ी ही सुन्दर, सूक्ष्म और प्रभावोत्पादक है। विषय-निर्वाचन भी इसका बड़ा पांडित्यपूर्ण है। मानवजीवनको शुद्ध और सुन्दर बनानेके लिए जितनी विशालमात्रामें इसमें उपदेश दिया गया है उतना अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। इसके अध्ययनसे सन्तप्त-हृदयको बहुत शांति और बल मिलता है, यह हमारा निजका भी अनुभव है। एक ही रात्रिमें दोनों नेत्र चले जानेके पश्चात् हमारे हृदयको प्रफुल्लित रखनेका श्रेय कुरलको ही प्राप्त है। हमारी रायमें यह काव्य संसारके लिए वरदान स्वरूप जो भी इसका अध्ययन करेगा वही इसपर निछावर हो जावेगा। हम अपनी इस धारणाके समर्थनमें तीन अनुवादकोंके अभिमत यहां उद्धृत करते हैं :—

१. डा० पोपका अभिमत—'मुझे प्रतीत होता है कि इन पद्योंमें नैतिक कृतज्ञताका प्रबलभाव, सत्यकी तीव्रशोध, स्वार्थरहित तथा हार्दिक दानशीलता एवं साधारणतया उज्जवल उद्देश्य अधिक प्रभावक हैं। मुझे कभी कभी ऐसा अनुभव हुआ है कि मानो इसमें ऐसे मनुष्योंके लिए भण्डाररूपमें आशीर्वाद भरा हुआ है जो इस प्रकारकी रचनाओंसे अधिक आनन्दित होते हैं और इस तरह सत्यके प्रति क्षुधा और पिपासाकी विशेषताको घोषित करते हैं, वे लोग भारत-वर्षके लोगोंमें श्रेष्ठ हैं तथा कुरल एवं नालदीने उन्हें इस प्रकार बनानेमें सहायता दी है।

२. श्री वी. वी. एस. अय्यरका अभिमत—'कुरल-कर्ताने आचार-धर्मकी महत्ता और शक्तिका जो वर्णन किया है उससे संसारके किसी भी धर्म संस्थापकका उपदेश अधिक प्रभावयुक्त या शक्तिप्रद नहीं है। जो तत्व इसमें

---

*यह वह काव्य है जिसे श्रुतकेवली भद्रबाहुके संघमें दक्षिण देशमें गये हुये आठ हजार मुनियोंने मिलकर बनाया था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बतलाये हैं उनसे अधिक सूक्ष्मबात भीष्म या कौटिल्य कामन्दक या रामदास विष्णुशर्मा या माई० के० वेलीने भी नहीं कही है। व्यवहारका जो चातुर्य इसने बतलाया है और प्रेमीका हृदय और उसकी नानाविधिवृत्तियों पर जो प्रकाश इसने डाला है उसमे अधिक पता कालिदास या शेक्सपियरको भी नहीं था।'

श्रीराजगोपालाचार्यका अभिमत—'तामिल जातिकी अन्तरात्मा और उसके संस्कारोंको ठीक तरहसे समझनेके लिये 'त्रिक्कुरल का पढ़ना आवश्यक है। इतना ही नहीं यदि कोई चाहे कि भारतके समस्त साहित्यका मुझे पूर्णरूपसे ज्ञान हो जाय तो त्रिक्कुरलको बिना पढ़े हुए उसका अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता।

त्रिक्कुरल, विवेक शुभसंस्कार और मानव प्रकृतिके व्यवहारिक ज्ञानकी खान है। इस अद्भुत ग्रन्थकी सबसे बड़ी विशेषता और चमत्कार यह है कि इसमें मानवचरित्र और उसकी दुर्बलताओंकी तह तक विचार करके उच्च आध्यात्मिकताका प्रतिपादन किया गया है। विचारके सचेत और संयत औदार्यके लिए त्रिक्कुरलका भाव एक ऐसा उदाहरण है कि जो बहुत काल तक अनुपम बना रहेगा। कलाकी दृष्टिसे भी संसारके साहित्यमें इसका स्थान ऊँचा है, क्योंकि यह ध्वनि काव्य है, उपमाएँ और दृष्टान्त बहुत ही समुचित रक्खे गए हैं और इसकी शैली व्यङ्गपूर्ण है।'

## कुरलका कर्तृत्व—

भारतीय प्राचीनतम पद्धतिके अनुसार यहांके ग्रन्थकर्ता ग्रन्थमें कहीं भी अपना नाम नहीं लिखते थे। कारण, उनके हृदयमें कीर्त्तिलालसा नहीं थी किन्तु लोकहितकी भावना ही काम करती थी। इस पद्धतिके अनुसार लिखे गये ग्रंथोंके कर्तृत्व-विषयमें कभी कभी कितना ही मतभेद खड़ा हो जाता है और उसका प्रत्यक्ष एक उदाहरण कुरलकाव्य है। कुछ लोग कहते हैं कि इसके कर्ता 'तिरुवल्लवर' थे और कुछ लोग यह कहते हैं कि इसके कर्ता 'एलाचार्य' थे।

इसी प्रकार कुरलकर्त्ताके धर्म सम्बन्धमें भी मतभेद है शैव लोग कहते हैं कि यह शैवधर्मका ग्रन्थ है और वैष्णव लोग इसे वैष्णवधर्मका ग्रन्थ बतलाते हैं। इसके अंग्रेजी अनुवादक डा० पोपने तो यहाँ तक लिख दिया है कि 'इसमें संदेह नहीं कि ईसाई धर्मका कुरलकर्ता पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। कुरलकी रचना इतनी उत्कृष्ट नहीं हो सकती थी यदि उन्होंने सेन्टटाममसे मलयपुरमें ईसाके उपदेशोंको न सुना होता।' इस प्रकार भिन्न भिन्न सम्प्रदाय वाले कुरलको अपना अपना बनानेके लिए परस्पर होड़ लगा रहे हैं।

इन सबके बीच जैन कहते हैं कि 'यह तो जैन ग्रन्थ है, सारा ग्रन्थ "अहिंसा परमोधर्मः" की व्याख्या है और इसके कर्त्ता श्री एलाचार्य हैं, जिनका कि अपरनाम कुन्दकुन्दाचार्य है।'

शैव और वैष्णवधर्मकी साधारण जनतामें यह भी लोकमत प्रचलित है कि कुरलके कर्त्ता अछूत जातिके एक जुलाहे थे। जैन लोग इस पर आपत्ति करते हैं कि नहीं, वे क्षत्री और राजवंशज हैं। जैनोंके इस कथनसे वर्तमान युगके निष्पक्ष तथा अधिकारी तामिल-भाषा विशेषज्ञ सहमत हैं। श्रीयुत् राजाजी राजगोपालाचार्य तामिलवेदकी प्रस्तावनामें लिखते हैं कि—'कुछ लोगोंका कथन है कि कुरलके कर्त्ता अछूत थे, पर ग्रन्थके किसी भी अंशसे या उसके उदाहरण देने वाले अन्य ग्रन्थ लेखकोंके लेखोंसे इसका कुछ भी आभास नहीं मिलता। और हमारी रायमें बुद्धि कहती हैं कि अ ली एक तामिल भाषाका ज्ञाता अछूत कुरलको नहीं बना सकता, कारण कुरलमें तामिल प्रांतीय विचारोंका ही समावेश नहीं है किन्तु सारे भारतीय विचारोंका दोहन है। इसका अर्थशास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान-कौटिलीय अर्थशास्त्रकी कोटिका है। इस ग्रन्थका रचयिता निःसन्देह बहुश्रुत और बहुभाषा-विज्ञ होना चाहिए, जैसे एलाचार्य थे।

तामिल भाषाके कुछ समर्थ अजैन लेखकोंकी यह भी राय है कि 'कुरलके कर्त्ताका वास्तविक परिचय अब तक हम लोगोंको अज्ञात है, उसके कर्त्ता तिरुवल्लवरका यह कल्पित नाम भी संदिग्ध है। उनकी जीवन घटना ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक तथ्योंसे अपरिपूर्ण है।'

## अन्तः साक्षी—

अतः हम इन कल्पित दन्तकथाओंका आधार छोड़कर ग्रन्थकी अन्तः साक्षी और प्राप्त ऐतिहासिक उदाहरणोंको लेकर विचार करेंगे, जिससे यथार्थसत्यकी खोज हो सके। जो भी निष्पक्ष विद्वान इस ग्रंथका सूक्ष्मताके साथ परीक्षण करेगा उसे यह बात पूर्णतः स्पष्ट हुए बिना नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहेगी कि यह ग्रन्थ शुद्ध अहिंसाधर्मसे परिपूर्ण है और इसलिये यह जैन मस्तिष्ककी उपज होना चाहिए। श्रीयुत् सुब्रह्मण अय्यर अपने अंग्रेजी अनुवादकी प्रस्तावनामें लिखते हैं कि 'कुरलकाव्यका मंगलाचरण वाला प्रथम अध्याय जैनधर्मसे अधिक मिलता है।'

फूल भले ही यह न कहे कि मैं अमुक वृक्षका हूँ, फिर भी उसकी सुगन्धि उसके उत्पादक वृक्षको कहे बिना नहीं रहती; ठीक इसी प्रकार किसी भी ग्रंथके कर्ताका धर्म हमें भले ही ज्ञात न हो पर उसके भीतरी विचार उसे धर्म विशेषका घोषित किये बिना न रहेंगे। लेकिन इन विचारों का पारखी होना चाहिए। यदि अजैन विद्वान् जैनवाङ्मयके ज्ञाता होते तो उन्हें कुरलको जैनाचार्यकृत माननेमें कभी देरी न लगती। ग्रन्थकर्त्ताने जैन भाव इस काव्यमें कलापूर्ण ढंगसे लिखे हैं उनको वे लोग जैनधर्मसे ठीक परिचित न होने के कारण नहीं समझ सके हैं कुरलकी सारी रचना जैन-मान्यताओंसे परिपूर्ण है। इतना ही नहीं किन्तु उसका निर्माण भी जैनपद्धतिको लिये हुए हैं। इसका कुछ दिग्दर्शन हम यहां कराते हैं—

इसमें किसी वैदिक देवताकी स्तुति न देकर जैनधर्मके अनुसार मंगलकामना की गई है। जैनियोंमें मंगल-कामना करनेकी एक प्राचीन पद्धति है, जिसका मूल यह सूत्र है कि 'चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।" अर्थात् चार हमारे लिये मंगलमय हैं—अरहन्त सिद्ध, साधु और सर्वज्ञप्रणीत धर्म। देखिए 'ईश्वरस्तुति' नामक प्रथम अध्यायमें प्रथम पद्यसे लेकर सातवें तक अरहन्त स्तुति है और आठवेंमें सिद्धस्तुति है। नवमें और दशवें में साधुके विशेष भेद आचार्य और उपाध्यायकी स्तुति है।

सम्राट् मौर्य चन्द्रगुप्तके समय उत्तर भारतमें १२ वर्षका एक बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा था, जिसके कारण साधुचर्या कठिन हो गई थी। अतः श्रुतकेवली भद्रबाहुके नेतृत्वमें आठ हजार मुनियोंका संघ उत्तर भारतसे दक्षिण भारत चला गया था। मेघवर्षाके बिना साधुचर्या नहीं रह सकती यह भाव उस समय सारी जनतामें छाया था, इसलिए कुरलके कर्ताने उसी भावसे प्रभावित होकर 'मुनि स्तुति' नामक तृतीय अध्यायके पहले 'मेघ महिमा' नामक द्वितीय अध्यायको लिखा है। साधुस्तुतिके पश्चात् चौथे अध्यायमें मंगलमय धर्मकी स्तुति की गई।

ईश्वरस्तुति नामक प्रथम अध्यायके प्रथम पद्यमें 'आदिपकवन' शब्द आया है जिसका अर्थ होता है 'आदि भगवान', जो कि इस युगके प्रथम अरहन्त भगवान आदीश्वर ऋषभदेवका नाम है। दूसरे पद्यमें उनकी सर्वज्ञता का वर्णन कर पूजाके लिए उपदेश दिया गया है। तीसरे पद्यमें 'मलिमिशै' अर्थात् कमलगामी कहकर उनकी अरहन्त अवस्थाके एक अतिशयका वर्णन है। चौथे पद्यमें उनकी वीतरागताका व्याख्यान कर, पांचवें पद्यमें गुणगान करनेसे पापकर्मोंका क्षय कहा गया है, छठे पद्यमें उनसे उपदिष्ट धर्म तथा उसके पालनका उपदेश दिया गया है और सातवेंमें उपर्युक्त देवकी शरणमें आनेसे ही मनुष्यको सुख शांति मिल सकती है ऐसा कहा है। जैनधर्ममें सिद्ध परमेष्ठीके आठगुण माने गये हैं इसलिए सिद्धस्तुति करते हुए आठवें पद्यमें उनके आठ गुणोंका निर्देश किया गया है।

जैनधर्ममें पृथ्वी वातवलयसे वेष्टित बतलाई गई है कुरलमें भी पच्चीसवें अध्यायके पांचवें पद्यमें दयाके प्रकरणमें कहा गया है—'क्लेश दयालु पुरुषके लिए नहीं है, भरी पूरी वायु वेष्टित पृथ्वी इस बातकी साक्षी है।

सत्यका लक्षण कुरलमें वही कहा गया है जो जैनधर्म को मान्य है—ज्योंको त्यों बात कहना सत्य नहीं है किंतु समीचीन अर्थात् लोकहितकारी बातका कहनाही सत्य है, भले ही वह ज्यों की त्यों न हो —

नहीं किसी भी जीवको, जिससे पीड़ा कार्य।
सत्य बचन उसको कहें, पूज्य ऋषीश्वर आर्य ॥१॥

वैदिक पद्धतिमें जब वर्णव्यवस्था जन्ममूलक है तब जैन पद्धतिमें वह गुणमूलक है। कुरलमें भी गुणमूलक वर्णव्यवस्थाका वर्णन है—'साधु-प्रकृति-पुरुषोंको ही ब्राह्मण कहना चाहिए, कारण वे ही लोग सब प्राणियों पर दया रखते हैं।

वैदिक वर्णव्यवस्थामें कृषि शूद्रका ही कर्म है तब कुरल अपने कृषि अध्यायमें उसे सबसे उत्तम आजीविका बताता है; क्योंकि अन्यलोग पराश्रित तथा परपिण्डोपजीवी हैं। जैन शास्त्रानुसार प्रत्येक वर्ण वाला व्यक्ति कृषि कर सकता है।

उनका जीवन सत्य जो, करते कृषि उद्योग।
और कमाई अन्यकी, खाते बाकी लोग ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन शास्त्रोंमें नरकोंको 'विवर' अर्थात् बिलरूपमें तथा मोक्ष स्थानको स्वर्गलोकके ऊपर माना है। कुरलमें ऐसा ही वर्णन है; जैसाकि उसके पद्योंके निम्न अनुवादसे प्रकट है—

जीवनमें ही पूर्वसे कहे स्वयं अज्ञान।
अहो नरकका छुद्रबिल, मेरा अगला स्थान॥
'मेरा' मैं ? के भाव तो, स्वार्थ गर्वके थोक।
जाता त्यागी है वहाँ, स्वर्गोपरि जो लोक॥

सागारधर्मामृतके एक पद्यमें पं० आशाधरजीने प्राचीन जैन परम्परासे प्राप्त ऐसे चौदह गुणोंका उल्लेख किया है जो गृहस्थ धर्ममें प्रवेश करने वाले नर-नारियोंमें परिलक्षित होने चाहिये, वह पद्य इस प्रकार है—

न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुरुन् सद्गीस्त्रिवर्गं भजन्,
अन्योऽन्यानुगुणं तदर्हगृहिणी स्थानालयो ह्रीमयः।
युक्ताहारविहारआर्यसमितिः प्राज्ञः कृतज्ञो वशी,
शृण्वन् धर्मविधिं दयालु रघभीः सागरधर्मं चरेत्॥

हम देखते हैं कि इन चौदह गुणोंकी व्याख्याही सारा कुरल काव्य है।

## ऐतिहासिक बाहरी साक्षी—

१. शिलप्पदिकरम्—यह एक तामिल भाषाका अति सुन्दर प्राचीन जैनकाव्य है। इसकी रचना ईसाकी द्वितीय शताब्दीमें हुई थी। यह काव्य, काव्यकलाकी दृष्टिसे तो महत्त्वपूर्ण है ही, साथ ही तामिल जातिकी समृद्धि, सामाजिक व्यवस्थाओं आदिके परिज्ञानके लिए भी बड़ा उपयोगी है; और प्रचलित भी पर्याप्त है इसके रचयिता चेरवंशके लघु युवराज राजर्षि कहलाने लगे थे। इन्होंने अपने शिलप्पदिकरम्में कुरलके अनेक पद्य उद्धरणमेंमें देकर उसे आदरणीय जैनग्रन्थ माना है।

२. नीलकेशी—यह तामिलभाषामें जैनदर्शनका प्रसिद्ध प्राचीन शास्त्र है। इसके जैन टीकाकार अपने पक्षके समर्थनमें अनेक उद्धरण बड़े आदरके साथ देते हैं, जैसे कि 'इम्मोट्टू' अर्थात् हमारे पवित्र धर्मग्रन्थ कुरलमें कहा है।

३. प्रबोधचन्द्रोदय—यह तामिलभाषामें एक नाटक है, जो कि संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदयके आधार पर शंकराचार्यके एक शिष्य द्वारा लिखा गया है। इसमें प्रत्येक धर्मके प्रतिनिधि अपने अपने धर्मग्रन्थका पाठ करते हुए रंगमंच पर लाये गये हैं। जब एक निर्ग्रन्थ जैन मुनि स्टेज पर आते हैं तब वह कुरलके उस विशिष्ट पद्यको पढ़ते हुए प्रविष्ट होते हैं जिनमें अहिंसा सिद्धान्तका गुणगान इस रूपमें किया गया है :—

सुनते हैं बलिदानसे, मिलती कई विभूति।
वे भव्योंकी दृष्टिमें, तुच्छघृणा की मूर्ति॥

यहाँ यह सूचित करना अनुचित नहीं है कि नाटककारकी दृष्टिमें कुरल विशेषतया जैनग्रन्थ था, अन्यथा वह इस पद्यको जैन संन्यासीके मुखसे नहीं कहलाता।

इस अन्तरंग और बहिरङ्ग साक्षीसे इस विषयमें सन्देहके लिए प्रायः कोई स्थान नहीं रहता कि यह ग्रन्थ एक जैन कृति है। निःसन्देह इस नीतिके ग्रन्थकी रचना महान् जैन विद्वान्के द्वारा विक्रमकी प्रथम शताब्दके लगभग इस ध्येयको लेकर हुई है कि अहिंसा सिद्धान्तका उसके सम्पूर्ण विधिरूपोंमें प्रतिपादन किया जावे।

(अपूर्ण)

# साहित्य परिचय और समालोचन

पुरुषार्थसिद्ध्युपायटीका—मूलकर्ता आचार्य अमृतचन्द्र टीकाकार, पं० गाथूरामजी प्रेमी, बम्बई प्रकाशक परमश्रुत प्रभावक मण्डल जौहरी बाजार, बम्बई नं० २। पृष्ठ संख्या १२०। मूल्य दो रुपया।

प्रस्तुत ग्रन्थमें आचार्य अमृतचन्द्रने पुरुषार्थ सिद्धिके उपाय स्वरूप श्रावक धर्मका कथन करते हुए सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रयके स्वरूपादिका विवेचन किया है इस ग्रन्थपर एक अज्ञात कर्तृक संस्कृत टीका जयपुरके शास्त्र भण्डारमें पाई जाती है और दो तीन हिन्दी टीकाएं भी हो चुकी हैं परन्तु प्रेमीजीने इस टीका को बालकोपयोगी बनानेका प्रयत्न किया है। टीकामें अन्वयार्थ और भावार्थ दिया गया है और यथास्थान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फुटनोटोंमें उसके विषय के स्पष्टी करणकी सूचना भी दी गई है। इस कारण टीका सरल और विद्यार्थियोंके लिये सुगम होगई है—उसकी सहायतासे वे ग्रन्थके विषयको सहज ही समझ सकते हैं। यह संस्करण अपने पिछले संस्करणों की अपेक्षा संशोधन दिके कारण खास अपनी विशेषता रखता है।

प्रस्तावनामें आचार्य अमृतचन्द्रका परिचय देते हुए उन्हें विक्रमकी १२वीं शताब्दीका विद्वान सूचित किया गया है, जो ऐतिहासिक दृष्टिसे विचारणीय है। जबकि पट्टावलीमें आचार्य अमृतचन्द्रको विक्रमकी १०वीं शताब्दीका विद्वान बतलाया गया है। साथ ही, प्रेमीजीने ग्रन्थ कर्ताके सम्बन्धमें नया प्रकाश डालते हुए, पज्जुण्ण चरिउके कर्ता सिंहकविके गुरु मलधारी माधवचन्द्रके शिष्य अमि या अमृतचन्द्रको पुरुषार्थसिद्धयुपायके कर्ता होनेकी संभावना भी व्यक्त की है।

परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे प्रेमीजीकी उक्त धारणा अथवा कल्पना संगत प्रतीत नहीं होती; क्योंकि प्रथम तो अमृतचन्द्रका समय विक्रम संवत् १०५५ से बादका नहीं हो सकता। कारण कि 'धर्मरत्नाकर' के कर्ता जयसेनने जो लाल वागडसंघके विद्वान भावसेनके शिष्य थे। जयसेनने अपना उक्त ग्रंथ वि०संवत् १०५५ में बनाकर समाप्त किया है*। उस ग्रन्थमें आचार्य अमृतचन्द्रके पुरुषार्थसिद्धयुपाय के ५६ पद्य पाये जाते हैं। साथ ही, सोमदेवाचार्यके यशस्तिलकचम्पूके भी १०० से ऊपर पद्य उद्धृत हैं। अतः अमृतचन्द्रका समय वि० सं० १०५५ से बादका नहीं हो सकता ×।

अब रही, 'पज्जुण्णचरिउके कर्त्ता सिंहकविके गुरु अमृतचन्द्रके साथ एकत्वकी बात। सो दोनों अमृतचन्द्र भिन्न २ व्यक्ति हैं। पुरुषार्थसिद्धयुपायके कर्ताको पं० आशाधरजीने 'ठक्कुरोप्याह' वाक्यके साथ उल्लेखित किया है जिससे वे ठाकुर-क्षत्रिय राजपूत ज्ञात होते हैं। जब कि 'पज्जुण्णचरिउकी प्रशस्तिमे ऐसी कोई बात नहीं है।

दूसरे सिंह कविने अपनी रचना, वंभणवाड (सिरोही) में वहांके गुहिल वंशीय राजा भुल्लणके राज्यकालमें, जो मालव नरेश बल्लालका मांडलिक सामन्त था और जिसका राज्यकाल विक्रम संवत् १२०० के आस पास पाया जाता है।

बल्लालकी मृत्युका उल्लेख अनेक प्रशस्तियोंमें मिलता है। बड़नगरसे प्राप्त कुमारपाल प्रशस्तिके १५ श्लोकोंमें बल्लाल और कुमारपालकी विजयका उल्लेख किया गया है और लिखा है कि कुमारपालने बल्लालका मस्तक महलके द्वार पर लटका दिया था। चूंकि कुमारपालका राज्यकाल वि० सं० ११९९ से वि० सं० १२२९ तक पाया जाता है और इस बड़नगर प्रशस्तिका काल सन् ११५१ (वि० सं० १२०८) है। अतः बल्लाल की मृत्यु ११५१ A. D. (वि० सं० १२०८) से पूर्व हुई है।

कुमारपाल, यशोधवल, बल्लाल और चौहान राजा अर्णोराज ये सब राजा समकालीन हैं। अतः ग्रन्थ-प्रशस्तिगत कथनको दृष्टिमें रखते हुए यह प्रतीत होता है कि उक्त प्रद्युम्नचरित की रचना वि० सं० १२०८ से पूर्व हो चुकी थी।

ग्रन्थ प्रशस्तिमें उल्लिखित अमृतचन्द्र, माधवचन्द्रके शिष्य थे जो 'मलधारी'* उपाधिसे अलंकृत थे। भट्टारक अमृतचन्द्र तप तेज रूपी दिवाकर, व्रत नियम तथा शीलके रत्नाकर (समुद्र) थे। तर्क रूपी लहरोंसे जिन्होंने परमतको झंकोलित कर दिया था—डगमगा दिया था जो उत्तम व्याकरणरूप पदोंके प्रसारक थे। और जिनके ब्रह्मचर्यके तेजके आगे कामदेव दूरसे ही वंकित (खंडित) होनेकी आशंकासे मानों छिप गया था—कामदेव उक्त मुनिके प्रचण्ड तेजके अमृतचन्द्र आगे आ नहीं सकता था। अर्थात् मुनि पूर्ण ब्रह्मचारी थे।

आचार्य अमृतचंद्रके गुरुका अभी तक कोई नाम ज्ञात नहीं हुआ। वे अध्यात्मवादके अच्छे ज्ञाता और आचार्य कुन्दकुन्दके प्रभृतत्रयके अच्छे मर्मज्ञ थे। न्यायशास्त्रके भी विद्वान थे। परन्तु वे प्रद्युम्न चरितके कर्तासे बहुत पहले हो गए हैं। उनका समय विक्रमकी १० वीं शताब्दीसे बाद नहीं हो सकता।

परमानन्द जैन शास्त्री

---

* देखो, अनेकान्त वर्ष ८ किरण ४-५ में 'धर्मरत्नाकर और जयसेन नामके आचार्य नामका लेख।

× देखो अनेकान्त वर्ष ८ कि० १०-११ में प्रकाशित 'महाकविसिंह और प्रद्युम्नचरित' नामका लेख—

* देखो, सन् ११५१ की बड़ नगर प्रशस्ति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

# महत्वपूर्ण प्रवचन

(श्री १०५ पूज्य क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी)

## साधु कौन है ?

जिन्होंने बाह्याभ्यन्तर परिग्रहका त्याग कर दिया वह साधु है। सचमुचमें देखा जाय तो शांतिका स्रोत केवल एक निर्ग्रन्थ अवस्थामें ही है। यदि त्यागी वर्ग न हों तो आप लोगोंको ठीक राह पर कौन लगावे। कहा भी है :—

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षु रुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवेनमः॥

समस्त संसारी प्राणी अज्ञानरूपी तिमिर (अंधकार) से व्याप्त हैं। ज्ञानरूपी अंजनकी शलाकासे जिन्होंने हमारे नेत्रोंको खोल दिया है ऐसे श्री गुरुवरको नमस्कार है।

जो आत्माका साधन करता है, स्वरूपमें मग्न हो कर्म-मलको जलानेकी चेष्टा करता है वह साधु है। समन्तभद्र स्वामीने बतलाया कि वही तपस्वी प्रशंसाके योग्य है जो विषयाशासे रहित है, निराम्भी है अपरिग्रही है, और ज्ञान-ध्यान-तपमें आसक्त हैं। वह स्व समय और पर समयकी महत्तासे परिचित है। आचार्य कुन्द-कुन्दने स्वसमय और पर समयका स्वरूप इस प्रकार बतलाया है :—

जीवो चरित्त दंसण णाणिट्ठउ तं हि ससमय जाण।
पुग्गलकम्मपदेसट्ठियंच जाण परसमयम्॥

जो आत्मा दर्शन, ज्ञान, तथा चारित्रमें स्थित है वही 'स्व समय' है और जो पुद्गलादि पर पदार्थोंमें स्थित है उनको 'पर समय' कहते हैं। तथा 'शुद्धात्माश्रितः स्वसमयो मिथ्यात्व रागादिविभावपरिणामाश्रितः परसमय इति।, अर्थात् जो शुद्धात्माके आश्रित है वह स्वसमय है और जो मिथ्यात्व रागादिविभावपरिणामोंके आश्रित है उसे ही परसमय कहते हैं। परसमयसे हटकर स्वसमयमें स्थिर होना चाहिये। परन्तु हम क्या कहें आप लोगोंकी बात।

एक साधुके पास एक चूहा था। एक दिन एक बिल्ली आई और वह चूहा डरकर साधु महाराजसे बोला—भगवन्! 'मार्जाराद् विभेमि' अर्थात् मैं बिल्लीसे डरता हूँ। तब साधुने आशीर्वाद दिया 'मार्जारो भव' इससे वह चूहा बिलाव हो गया। एक दिन बड़ा कुत्ता आया, वह बिलाव डर गया और साधुसे बोला प्रभो! 'शुनो बिभेमि' अर्थात् मैं कुत्तेसे डरता हूँ। साधु महाराजने आशीर्वाद दिया 'श्वा भव', अब वह मार्जार कुत्ता हो गया। एक दिन बनमें महाराजके साथ कुत्ता जा रहा था अचानक मार्गमें व्याघ्र मिल गया। कुत्ता महाराजसे बोला—'व्याघ्राद् बिभेमि' अर्थात् मैं व्याघ्रसे डरता हूँ। तब महाराजने आशीर्वाद दिया कि 'व्याघ्रो भव' अब वह व्याघ्र हो गया। जब व्याघ्र उस तपोवनके सब हरिण आदि पशुओंको खा चुका तब एक दिन साधु महाराजके ही ऊपर झपटने लगा। साधु महाराजने पुनः आशीर्वाद दे दिया कि 'पुनरपि मूषको भव' अर्थात् फिरसे चूहा हो जा। तात्पर्य यह कि हमारे पुण्योदयसे यह मानव पर्याय प्राप्त हो गई, उत्तम कुल और उत्तम धर्म भी मिल गया अब चाहिये यह था कि कि किसी निर्जन स्थानमें जाकर अपना आत्मकल्याण करते; परन्तु यहां कुछ विचार नहीं है। तनिक संसारकी हवा लगी कि फिरसे विषय-वासनाओंकी कीचड़में जा फंसे। अब तो इन वासनाओंसे मनको मुक्त करके आत्महितकी ओर लगाओ। 'गुणपर्ययवद् द्रव्यम्' आत्माकी गुण पर्यायको जानो स्याद्वाद द्वारा पदार्थोंके स्वरूपको जान लेना प्रत्येक प्राणि-मात्रका कर्तव्य है।

## संसारका सापेक्षव्यवहार

अब देखो, वक्तृत्व व्यवहार भी श्रोतृत्वकी अपेक्षासे होता है। हम वक्ता हैं आप सब श्रोताओंकी अपेक्षासे इसी तरह श्रोतापन भी वक्तापनेकी अपेक्षा व्यवहारमें आता है। द्रव्य अनंत धर्मात्मक है। एक पदार्थ स्वसत्तासे अस्ति और परसत्ताकी अपेक्षा नास्ति है। देखा जाय तो उस पदार्थमें अस्ति नास्ति दोनों धर्म उसी समय विद्यमान हैं। "स्वपरोपादानापोहनव्यवस्था मात्रं हि खलु वस्तुनो वस्तुत्वं" वस्तुका वस्तुत्व भी यही है कि स्वरूपका उपादान और पररूपका अपोहन हो। यह पतित पावन शब्द है। पावन व्यवहार तभी होगा जब कोई पतित हो, पतित ही न हो तब पावन कौन कहलायेगा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस भाँति वस्तु सामान्य विशेषात्मक है। सामान्यापेक्षासे वस्तुमें अभेद और विशेषापेक्षासे उसमें भेद सिद्ध होता है। 'सर्वेषां जीवनां समाः" अर्थात् सब जीव समान हैं यह कहनेका तात्पर्य जीवत्वगुणकी अपेक्षासे है। यही जीवत्व सिद्धावस्थामें भी है और संसारीजीवोंके संसारावस्थामें भी है परन्तु जहाँ सब सिद्ध अनंतसुखके धारी हैं वहाँ हम संसारी जीव तो नहीं हैं। हम दुःखी हैं। यह सब नय विभागका कथन है।

एक माताको आप जिस दृष्टिसे देखते हैं तो क्या अपनी स्त्रीको भी उसी दृष्टिसे देखेंगे? और कदाचित् आप मुनि हो जायें तो क्या फिर भी आप उसी तरह से कटाक्ष करेंगे? ये महाराज हैं (आचार्य सूर्यसागर जी की ओर संकेत कर) किसी गृहस्थी के यहाँ जब ये चर्याके निमित्त जाते हैं तो श्रावक किस बुद्धिसे इन्हें आहार दान देता है। और वही श्रावक किसी क्षुल्लक (एकादश प्रतिमा-धारी श्रावक) को किस बुद्धिसे देता है और कदाचित्-वह श्रावक किसी कङ्गालको आहार देवे तो वह किस बुद्धिसे देगा। मुनिको वह श्रावक पूज्य बुद्धिसे आहारदान देवेगा और उस कङ्गलेको वह करुणाबुद्धिसे, कङ्गला यदि उससे यह कहे कि मैं इस तरहसे आहार नहीं लेता। मैं तो उसी तरह नवधा भक्ति पूर्वक लूंगा, जिस तरह तुमने मुनिको दिया है तो अब हम आपसे पूंछते हैं क्या हम उसी तरह आहार दे देवेंगे? नहीं। उससे यही कहेंगे कि भाई! अगर तू भी—मुनि बन जाय और इर्यापथ शोधकर चलने लगे तो तुझे भी दे सकते हैं।

तिलकने "गीता-रहस्य" में लिखा है कि 'गौ-ब्राह्मण-की रक्षा करनी चाहिये। गौ और ब्राह्मण दोनों जीव हैं तो क्या इसका मतलब यह हुआ कि गौका चारा ब्राह्मणको दे देवें और ब्राह्मणका हलुआ गायको डाल देवें? द्रव्यका सदैव अपेक्षासे कथन किया जाता है। कोई वस्तु किस अपेक्षासे कही गई है यह हम समझलेवें तो संसारमें कभी विसंवाद ही पैदा न हो।

यह लड़का किसका है? क्या यह अकेली स्त्री का ही है? नहीं तो क्या केवल पुरुष का है? नहीं! दोनों (स्त्री पुरुष) के संयोगावस्थासे लड़का उत्पन्न हुआ है। जिस तरह यह सब कथन सापेक्ष है उसी तरह साधुता और असाधुताका कथन भी सापेक्ष है। क्योंकि वस्तुका स्वभाव अनन्त धर्मात्मक है उनका सापेक्षदृष्टिसे व्यवहार करने पर विरुद्धताका आभास नहीं होता किन्तु विरोध एकान्त-दृष्टिके अपनानेसे ही होता है। एकान्तता ही असाधुता है उससे आत्मा संसारका ही पात्र बना रहता है।

जीव और पुद्गलके संसर्गसे यह संसारावस्था हुई है। जीव अपने विभावरूप परिणमन कर रागी-द्वेषी हुआ है और पुद्गल, अपने विभावरूप. और इस तरह इन दोनों-का बन्ध एक क्षेत्रावगाही हो गया है। इस अवस्थामें जब हम विचार करते हैं तब मालूम पड़ता है कि यह आत्मा बद्धस्पृष्ट भी है और अबद्धस्पृष्ट भी। कर्मसम्बन्ध-की दृष्टिसे विचार करते हैं तो यह बद्धस्पृष्ट भूतार्थ है, इसमें सन्देह नहीं, और जब केवल स्वभावकी दृष्टिसे देखते हैं तो यह अभूतार्थ भी है। सरोवरमें कमलिनीका जिसको जलस्पर्श हो गया है इस दृष्टिसे विचार करते हैं तो वह पत्र जलमें लिप्त है यह भूतार्थ है परन्तु जलस्पर्श छू नहीं सकता है जिसको ऐसे कमलिनीके पत्रको स्वभावकी दृष्टिसे अवलोकन करते हैं तो यह अभूतार्थ है क्योंकि वह जलसे अलिप्त है। अतः अनेकांतको अपनाए बिना वस्तु-स्वरूप-को समझना दुश्वार है। नानापेक्षासे आत्म-ज्ञान करना क्या बड़ी बात है 'समाधितन्त्र' में श्रीपूज्यपादस्वामी लिखते हैं—

यन्मया दृश्यते रूपं तन्न जानाति सर्वथा।
जानन्न दृश्यते रूप ततः केन ब्रवाम्यहम्॥

अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा जो यह शरीरादिक पदार्थ दिखाई देते हैं वह अचेतन होनेसे जानते नहीं हैं। और जो पदार्थोंको जानने वाला चैतन्यरूप आत्मा है वह इन्द्रियोंके द्वारा दिखाई नहीं देता, इसलिए मैं किसके साथ बात करूँ। यह पण्डितजी हैं; इनसे हम बात करते हैं तो जिससे हम बात कर रहे हैं वह तो दिखता नहीं है और जिससे हम बात कर रहे हैं वह अचेतन होनेसे समझता नहीं है। इसलिए सब झंझटोंसे छूटकार विभावभावोंका परित्यागन कर स्वभावमें स्थिर रहनेका यह क्या ही उत्तम उपाय है। वही स्वामीजी आगे लिखते हैं—

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रतिपादये।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः॥

जो प्रतिपादन करता है वह तो प्रतिपादक कहलाता है और जिसको प्रतिपादन करना चाहते हैं वह प्रतिपाद्य कहलाता है। तो कहते हैं कि यह सब मोही मनुष्योंकी पागलों जैसी चेष्टा है। यदि ऐसा ही है तो हम उन्हींसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूछते—महाराज ! फिर आप ही यह उपदेश, रचना चातुरी आदि कार्य क्यों करते हैं ? तो इससे मालुम पड़ता है कि मोहके सद्भावमें सब व्यवहार खलते हैं यह असत्य नहीं, सत्य है।

यह लोक षड्द्रव्यात्मक है जिसमें सब द्रव्य परस्पर मिले हुए एक दूसरेका चुम्बन करते रहते हैं। इतना होने पर भी सब अपने अपने स्वरूपमें तन्मय है। कोई द्रव्य किसी द्रव्यसे मिलता जुलता नहीं है पर फिर भी एक पर्यायसे दूसरी पर्याय उत्पन्न होती है और संसारका व्यवहार चलता रहता है।

## जैनधर्ममें त्यागका क्रम

जैनधर्ममें सदैव क्रम-क्रमसे ही कथन किया गया है। पहले उपदेश दिया जाता है कि अशुभोपयोगको छोड़ो और शुभोपयोगमें वर्तन करो और जो प्राणी शुभोपयोगमें स्थिर है उससे कहते हैं, भाई यह भाव भी संसार बंधनमें डालने वाला है। अतएव इसको भी त्यागकर शुद्धोपयोगमें वर्तन कर। कुन्दकुन्दाचार्य एक जगह कहते हैं कि प्रतिक्रमण भी विष है। अतः जहाँ प्रतिक्रमणको ही विषरूप कह दिया वहाँ अप्रतिक्रमण—प्रतिक्रमण नहीं करनेको—अमृतरूप कैसे कहा जा सकता है। शुद्धोपयोग प्राप्त करना प्राणी मात्राका ध्येय होना चाहिये। यह अवस्था जब तक प्राप्त नहीं हुई तब तक शुभोपयोगमें प्रवर्तन करना उत्तम है। अतएव क्रम क्रमसे चढ़नेका उपदेश है। तात्पर्य यही है कि यदि मनुष्य अपने भावों पर दृष्टिपात करे तो संसार बन्धनसे छूटना कोई बड़ी बात नहीं है। एक बार भी यह प्राणी अपनी अज्ञानताको मेट देवे तो वह परम सुखी हो सकता है।—अज्ञान क्या है ? ज्ञानावरणी कर्मके क्षयोपशममें जहाँ मिथ्यात्व लगा हुआ है वही अज्ञान है। उस अज्ञानका शरीर मोहसे पुष्ट होता है। और उसके प्रसादसे ही यह विचित्र लीला देखनेमें आ रही है। अतः आत्म-ज्ञानकी बड़ी आवश्यकता है। जिसने प्राप्त कर लिया वही मनुष्य धन्य है और उसीका जीवन सार्थक एवं सफल है।

## जीव और अजीवका भेद-विज्ञान

यह जीवाजीवाधिकार है। इस अधिकारमें जीव और अजीव दोनोंके अलग अलग लक्षणोंको कहकर जीवके शुद्धस्वरूपको दिखाना कर्ताको अभीष्ट है। कोई जीवको केवल रागद्वेषादिमय बतलाते हैं किन्तु ये तो पुद्गलके सम्बन्धसे उत्पन्न विभावभाव हैं। अतः जो जो भाव परके सम्बन्धसे होंगे वे कदापि जीवके नहीं कहलाये जा सकते, क्योंकि यहाँ तो जीवके शुद्ध स्वरूपको बतलाना है न। माथे पर तेल पोतलो तो वह चिकनाई तैलको ही कहलाई जायेगी। इसी तरह समस्त राग-द्वेष व मोहादिककी कल्लोलमालाएँ पुद्गल प्रकृतियोंसे उत्पन्न हुए विभाव भाव हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि वह (जीव) चित्स्वरूप चिच्छक्तिमात्र धारण करता हुआ शुद्ध टंकोत्कीर्ण एक विज्ञानघनस्वभाव वाला है सब प्राणियोंमें एक समान पाई जाने वाली चीज है। यहाँ किसी का भेद-भाव नहीं है। वस्तुस्थितिका ज्ञान सबके लिये परमावश्यक है।

एक पंगत हो रही थी। वहाँ दो अच्छे धनी-मानी आदमी आस-पास अगल-बगलमें बैठे हुए थे और बीचमें एक साधारण स्थितिका मनुष्य आ बैठा था अब वह परोसने वाला व्यक्ति इधर-उधर पूड़ियोंको दिखाकर उन सेठोंसे बोला—'देखो ! क्या बढ़िया पूड़ी है। बड़ी कोमल और मुलायम है। एक तो आपको अवश्य लेनी चाहिये।' परंतु उस बीचवाले मनुष्यसे कुछ न कहा। अनिच्छासे वह कहता भी तो तुरन्त ही वहाँसे हटकर उनको फिर दिखाने लगता। वह मनुष्य देखता ही रह जाता इस तरह दो बार हुआ, तीन बार हुआ। जब चौथी बार आया तो उसने उठकर एक चाँटा रसीद किया और बोला—बेवकूफ, क्या ये तेरे बाप हैं जो बार बार इनको दिखाकर परोसता है और मुझे योंही छोड़ जाता है ? क्या मैं यहाँ खाने नहीं आया ? मुझे क्यों नहीं परोसता ? इतना जब उससे कहा तब कहीं उसकी अक्ल ठिकाने पर आई। तो कहनेका तात्पर्य यही है कि वह वस्तु-स्वरूप सबका है। अपने विमल स्वरूपका बोध सबको हो सकता है उसमें किसी प्रकारका भेद-भाव नहीं है।

अब यहाँ जीव और अजीवका भेद दिखलाते हैं। परको ही आत्मा मानने वाले कोई मूढ़ कहते हैं 'अध्यवसान ही जीव है।' अन्य कोई नो कर्मको जीव मानते हैं। कोई कहते हैं कि साता और असाताके उदयसे जो सुख दुःख होता है वह जीव है। कोईका मत है कि जो संसारमें भ्रमण करता है उसके अतिरिक्त और कोई जीव नहीं है। कोई कहते हैं कि आठ काठीकी जैसे खाट होती है, इसके अलावा और खाट कोई चीज़ नहीं है उसी तरह आ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्मोंका संयोग ही जीव है और जीव कोई जीव नहीं है। इस प्रकारके तथा अन्य प्रकारके बहुतसे मत जीवको मान्यताके विषयमें हैं परन्तु इनमेंसे कोई भी मत सत्य नहीं है। सब भ्रममें हैं क्योंकि ये सब जीव नहीं है। जो अध्यवसानादि भावोंको ही जीव बतलाते हैं उनके प्रति आचार्य कहते हैं कि ये सभी भाव पौद्गलिक हैं। वे कदापि स्वभावमय जीव द्रव्य नहीं हो सकते, इन रागादि भावोंको जो जीव आगममें बतलाया है वह व्यवहारनयसे है किन्तु वे वस्तुतः जीव नहीं है। इसी प्रकार जो यह प्रलाप करते हैं कि साता और असातासे उत्पन्न सुख दुःखादि हैं वह जीव हैं उनको कहते हैं, भाई! सुख दुखादिका जिसको अनुभव होता है वह जीव है। 'जो संसारमें भ्रमण करता है वह जीव हैं ऐसी जिसकी मान्यता है उनके लिए कहते हैं कि इस भ्रमणके अतिरिक्त जो सदा शाश्वता रहने वाला है वह जीव है। जैसे आठ काठीके संयोगसे जो खाट कहलाती है वैसे कि आठ कर्मोंके संयोगसे उत्पन्न जीव नहीं है किन्तु जिस प्रकार आठ-काठीसे बनी हुई खाट उस पर शयन करनेवाला व्यक्ति भिन्न है उसी तरह आठ कर्मोंके अतिरिक्त जो कोई वस्तु है वह जीव है।

जब यह सिद्ध हो चुका कि वर्णादिक या रागादिक भाव जीव नहीं है तब सहज ही यह प्रश्न होता है कि जीव कौन है? ऐसा प्रश्न होने पर आचार्य कहते हैं--

अनाद्यनंतमचलं स्वसंवेद्यमिदं स्फुटम्।
जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते॥

यह जीव आनाद्यनंत है और स्वसंवेद्य है केवल अपने से ही अपने द्वारा जानने योग्य है। जिसमें चैतन्यका विलास हो रहा है ऐसा स्वाभाविक शुद्ध ज्ञान-दर्शन रूप जीव है जो स्वयं प्रकाशमय बोधरूप है।

अतः जीवमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श नहीं है। शरीर 'संस्थान' संहनन आदि भी नहीं है। राग, द्वेष, मोह, एवं कर्म नोकर्म आश्रव भी नहीं है।

न योगस्थान, बंधस्थान, उदयस्थान ही है और न मार्गणास्थान, स्थितिबन्धास्थान, संक्लेशस्थान ही; क्योंकि ये सभी पुद्गलजनित क्रियाएँ हैं अतः वे कदापि जीवके नहीं हो सकते।

इस प्रकार यह जीव और अजीवका भेद सर्वथा भिन्न है इसको ज्ञानीजन स्वयं स्पष्टतया अनुभव करते हैं किन्तु तिस पर भी यह अत्यंत बड़ा हुआ महामोह अज्ञानियोंको व्यर्थ ही अनेक प्रकारसे नाच नचाता हुआ उन्हें शुद्धात्मानुभूतिसे वंचित रखता है। आचार्य कहते हैं कि हे भव्य! तू व्यर्थ कोलाहलसे विरक्त होकर चैतन्यमात्र वस्तुको देख, हृदय-सरोवरमें निरंतर विहार करनेवाला ऐसा वह भगवान् आत्मा उसका यदि षण्मास पर्यंत भी अनुभव करे तो तुझे आत्म-तत्वकी अवश्य उपलब्धि हुए बिना न रहे। सुखके लिए तू अनन्तकालसे निरन्तर भटक रहा है पर सच्चा वास्तविक) सुख तुझे अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। इसका कारण क्या है? यह खोजनेका प्रयास भी नहीं किया। काम कैसे बने? किसीने कहा अरे, तेरा कान कौआ लेगया किंतु मूरखने अपना हाथ उठाकर कान पर नहीं देखा। कान कहाँ चला गया? इसी तरह कोई यह कहे कि हमारे तो पीठ ही नहीं है परन्तु तनिक हाथ पीछे मोड़कर देखा होता। कहीं नहीं गई है। अपने ही पास है। केवल उस तरफ लक्ष्य करनेकी आवश्यकता है।

## आत्माका प्रशान्त स्वभाव

एक 'ज्ञानसूर्योदय' नाटक है--उसमें लिखा है, भैया एक सभाभवनमें नट और नटी आये। नटने नटीसे कहा कि आज इन श्रोताओंको कोई एक अपूर्व नाटक सुनाओ। अपूर्व ऐसा जो कभी इन्होंने सुना न हो नटी बोली आर्य! ये संसारी प्राणी रात्रि-दिवस विषयोंमें लीन परिग्रहोंकी चिंताओंसे भाराक्रांत तथा चाहकी दाहसे दग्ध इनको ऐसी अवस्थामें सुख कहाँ? तब नट कहने लगा प्रिये? ऐसी बात नहीं है। 'आत्मास्वभावोऽस्तु शांतः केनापि कर्ममल कलङ्ककारणेन अशांतो जाता' अर्थात् आत्मा स्वभावसे शान्त है किन्तु किन्हीं कर्ममल कलङ्ककारणोंसे वह अशांत हो जाता है। अतः इन उपद्रवोंको हटाकर शांत बनजाओ क्योंकि शांतता (सुख) उसक सहज स्वभाव है। प्रत्येक द्रव्य अपने स्वभावमें रहकर ही शोभा पाता है। किंतु हम लोगोंकी प्रवृत्ति हो बाह्य विषयोंमें लीन हो रही है। उन्हीं सुखकी प्राप्तिमें सारी शक्ति लगा रहे हैं। क्या इनमें सच्चा सुख है? यही मोहकी महिमा है। पर वस्तुओंमें सुखकी कल्पनाका मृगतृष्णासे अपनी पिपासा शांत करना चाहते हैं। सचमुचमें देखा जाय तो सुख आत्माकी एक निर्मल पर्याय है। वह कहीं परमेंसे नहीं आती, क्योंकि ऐसा सिद्धांत है कि जिसकी जो चीज होती है वह उसीके पास रहती है। (फिरोजाबाद मेलेमें कियां गया एक प्रवचन)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org